RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC/CPM/01/KPHO/2019-21
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

गौतम बुद्ध

बाबा साहेब डा० अम्बेडकर

अक्टूबर 2019 | वर्ष – 11 | अंक : 09 | मूल्य : 5/-

संत कबीर दास | संत रविदास जी | घासीदास | बिरसामुण्डा | पेरियार रामास्वामी | छत्रपति शाहूजी महाराज | सन्त गाडगे | महात्मा ज्योतिबा राव फुले | नारायण गुरु | सावित्री बाई फुले | कांशीराम

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074

संरक्षक मण्डल :

मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621

कानूनी सलाहकार :

एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, एड. सुशील कुमार

राज्य उत्तर प्रदेश राज्य ब्यूरो प्रमुख :

सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741

क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :

40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631

मध्य प्रदेश राज्य :

ब्यूरो चीफ मुकेश कुमार अहिरवार, छत्तरपुर, मो.: 09039546658

छत्तीसगढ़ राज्य :

दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170

दिल्ली प्रदेश :

C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317

राजस्थान राज्य :

रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360

चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349

बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233

हरियाणा राज्य :

डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052

संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :

ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)

मो. : 9005204074, 8756157631

E-mail : dravinbharat1@gmail.com

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी

उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें – भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-नवीन मार्केट, कानपुर खाता सं.-33496621020 • IFSC CODE-SBIN005307

दलित जातियों की शिक्षा

I-1813 से 1854 तक

1. कहा जा सकता है कि बंबई प्रेसिडेंसी में ब्रिटिश के दौरान 1815 में बंबई शिक्षा समिति की स्थापना से शुरू हुई। इस समिति ने यूरोपियन बच्चों की शिक्षा के लिए अपने प्रयास जारी नहीं रखे। सूरत और थाणे में स्थानीय बच्चों को इस समिति के स्कूलों के लिए प्रोत्साहित किया गया और 1820 के प्रारंभ में बंबई में स्थानीय बच्चों के लिए चार पृथक स्कूल खोले गए। उनमें लगभग 250 विद्यार्थी थे। उसी साल अगस्त में स्थानीय बच्चों की शिक्षा के लिए और उपाय किए गए। स्थानीय भाषाओं में स्कूली पुस्तकें तैयार करने और स्थानीय स्कूलों की स्थापना या सहायता करने के लिए समिति ने एक विशेष समिति नियुक्त की। परन्तु शीघ्र यह महसूस किया गया कि इस प्रयास का व्यापक क्षेत्र मुख्यतः गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए स्थापित समिति के उद्देश्यों से परे है और 1922 में समिति एक पृथक निगम बन गई। तदुपरान्त इसका नाम बोंबे नेटिव स्कूल बुक एंड स्कूल सोसायटी रखा गया। बाद में 1827 में इसका नाम बदल कर बंबई नेटिव स्कूल सोसायटी कर दिया गया। माननीय माउंट स्टुअर्ट एलफिंस्टन इस नई सोसायटी के पहले प्रेसीडेंट थे। मुख्य न्यायाधिपति और बंबई सरकार की कार्यकारी परिषद के तीन सदस्यों को वाइस प्रेसीडेंट बनाया गया और प्रबंध समिति में बारह यूरोपियन और बारह भारतीय सदस्य थे जिनमें कैप्टन जार्ज जेरबिस आर. ई. और सदाशिव काशीनाथ छत्रे को सचिव बनाया गया। सोसायटी ने अपना कार्य सरकार से मिलने वाले 600 रूपये प्रतिमाह के अनुदान से आरम्भ किया। 1825 तक बंबई सरकार ने भी अपने खर्चे से जिलों के कस्बों में प्राथमिक स्कूल खोले और उन्हें कलक्टर के अधीन रखा। 1840 में इन दो स्वतंत्र संस्थाओं की गतिविधियों में तालमेल रखने के लिए छह सदस्यों का शिक्षा बोर्ड बनाया गया जिसमें तीन सदस्य सरकार द्वारा और 3 देसी नेटिव एजुकेशन सोसायटी द्वारा नियुक्त किए गए। यह बोर्ड 1855 में जन-शिक्षा के निदेशक की नियुक्ति तक शिक्षा विभाग का प्रभारी था।

2. एक मार्च 1856 को जब यह बोर्ड भंग हुआ तो बंबई प्रेसिडेंसी में 15 अंग्रेजी कालेज और स्कूल थे। इनमें विद्यार्थियों की संख्या 2850 थी। वहां 256 वर्नाकुलर स्कूल थे जिनकी छात्र संख्या 18,888 थी। इसी रिपोर्ट में बोर्ड ने कहा है :

24 अगस्त 1855 में अहमदनगर के कुछ निवासियों से यह याचिका प्राप्त हुई, जिसमें छोटी जातियों की शिक्षा के लिए एक स्कूल की स्थापना करने का और बाद में बनाए गए नए नियमों के अनुसार अध्यापकों को आधा वेतन देने का अनुरोध किया गया था। याचिकादाताओं ने स्कूल के एक कमरे का निर्माण कर लिया था और विद्यार्थियों की संख्या तीस बताई गई थी। इस प्रकार के स्कूल की स्थापना समृद्ध और सवर्ण जातियों के पूर्वाग्रहों के आड़े आती थी और अल्प वेतन पर अध्यापक के मिलने में कुछ कठिनाई अनुभव हो रही थी, परन्तु चूंकि याचिका इस विषय पर बाद की अधिसूचना में दी गई शर्तों के अनुसार की गई थी, हमने अनुरोध को तुरन्त स्वीकार कर लिया और नवम्बर में स्कूल खोल दिया गया। हमने विषय का मात्र उल्लेख किया है, क्योंकि यह पहला अवसर है कि हमने इन जातियों के लिए स्कूल खोला है (मूल में नहीं)

3. बोर्ड के इस वक्तव्य से कि प्रेसिडेंसी में छोटी जातियों के लिए पहली बार स्कूल खोला गया था, यह प्रश्न उठता है कि 1855 से पूर्व दलित जातियों की शिक्षा के बारे ब्रिटिश सरकार की क्या नीति थी? इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह जरूरी है कि प्रेसिडेंसी में 1813 से 1855 के बीच की ब्रिटिश सरकार की शिक्षा नीति के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि पेशवा सरकार के दौरान दलित जातियां शिक्षा से पूरी तरह वंचित थी। राज्य शिक्षा के किसी भी विचार में वे शामिल नहीं थे। इसका कारण यह था कि पेशवा राज्य मनु के सिद्धान्तों पर आधारित धर्म-तंत्र-राज्य था। उसके अनुसार शूद्रों और अतिशूद्रों को (शिक्षा विभाग की पिछड़ी जातियों के समकक्ष जातियां) जीवन स्वतंत्रता और संपत्ति का अधिकार भले ही रहा हो, किन्तु शिक्षा का कोई अधिकार नहीं था। इतनी विवशताओं में जी रही दलित जातियों ने इस घृणित धर्मतंत्र के पतन पर राहत की सांस ली। ब्रिटिश शासन की स्थापना से दलित जातियों में उच्च आकांक्षाएं जगीं। पहली बात यह है कि यह एक लोकतंत्र था, जिसके बारे में वे सोचते थे कि इसमें कोई ऊंच-नीच नहीं है और सभी इंसान बराबर हैं। यदि लोकतंत्र अपने सिद्धान्तों पर सही अर्थों में चले, तो वह पेशवा के धर्मतंत्र के पूर्णतः विपरीत था। दूसरे, दलित जातियों ने देश को जीतने में अंग्रेजों का साथ दिया था और उन्हें सहज विश्वास था कि इसके बदले में अंग्रेज विशेष रूप में नहीं, तो कम से कम अन्य वर्गों के समान तो उनकी सहायता करेंगे ही।

4. स्थानीय लोगों में शिक्षा का प्रसार करने के प्रश्न पर अंग्रेज समय तक चुप्पी साधे रहे। हालांकि भारत के प्रशासन के उच्चाधिकारी भारत के लोगों में ज्ञान के प्रसार के अपने नैतिक दायित्व और उसकी प्रशासनिक आवश्यकता से पूरी तरह बेखबर नहीं थे, फिर भी 1813 तक सार्वजनिक रूप से सरकार के दायित्व के संबंध में कोई घोषणा नहीं की गई थी। 1813 में संविधि 53, जार्ज चतुर्थ अध्याय 155 की धारा 43 में संसद ने निर्णय दिया कि भारत के राजस्व में से प्रति वर्ष एक लाख रूपये से अनधिक अलग रखा जाएगा, जो भारत के साहित्य में आवश्यक सुधार करने और यहाँ के विद्वानों को प्रोत्साहन देने तथा भारत में राज्य क्षेत्रों के निवासियों में विज्ञान की शिक्षा का प्रसार करने में व्यय किया जाएगा। इस संविधि व्यवस्था के अंतर्गत कोई सुसंगत, सुदृढ़ और सुसंगठित प्रयास 1823 तक नहीं हुआ। क्योंकि कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने 3 जून 1814 के पत्र में 1813 की संविधि की धारा 43 के कार्यान्वयन के तरीके को निर्धारित करते हुए गवर्नर जनरल इन काउंसिल को निदेश दिया था कि हिन्दुओं में संस्कृत की शिक्षा को बढ़ावा देने से उन उद्देश्यों की पूर्ति हो जाएगी जो संसद चाहती थी। परन्तु जब स्थानीय लोगों में शिक्षा को एक सुदृढ़ और सुसंगठित आधार प्रदान करने हेतु संगत प्रयास किए गए तो दलित जातियों को निराशा

ही हाथ लगी, क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने जान–बूझकर यह विनिर्णय दिया कि शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित रखी जाए। कहीं ऐसा न हो कि तथ्यों को काल्पनिक समझ लिया जाए, इसलिए बंबई प्रेसिडेंसी के बोर्ड आफ एजूकेशन के 1850–51 के प्रतिवेदन के निम्नलिखित उदारहण की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है :

पैरा 5– कोर्ट ऑफ इस प्रकार इस प्रेसिडेंसी की शिक्षा बोर्ड ने शिक्षा योजना डायरेक्टर्स के मतानुसार बोर्ड निर्धारित की जो माननीय कोर्ट से प्राप्त डिस्पैचों की प्रमुख द्वारा निर्धारित प्रणाली निषेधाज्ञाओं के अनुरूप है। उसका गौण आधार है उन लोगों की राय जो भारत में शिक्षा प्रणाली के विकास पर मनोयोग से विचार करते रहे हैं यथा आक्लैंड के अर्ल मेजर कैंडी तथा अन्य। उसका प्रमुख आधार है स्वयं अति बुद्धिमान स्वदेशी लोगों द्वारा खुलेआम घोषित आवश्यकताएं। हम दोहराते हैं कि परिषद में मान्यवर न्यायमूर्ति के पूर्ववर्ती ने बोर्ड को सूचित किया था कि यह प्रक्रिया बदली ही जाए।

पैरा 8 – उच्च वर्गों को यदि हमें कहने की अनुमति दी जाए तो हमें माननीय कोर्ट के शिक्षित करने के औचित्य पर उतने ही सूझबूझ वाले संकेत इस बारे में दीख पड़ते हैं कि वे कोर्ट के विचार कौन से क्षेत्र हैं, जिनकी ओर सरकारी शिक्षा की धारा को मोड़ा जाए, खास तौर पर उस दशा में जब व्यय की इस शाखा के लिए अति सीमित राशि उपलब्ध है। माननीय कोर्ट ने 1830 में मद्रास को इस प्रकार लिखा है, ''लेकिन शिक्षा में सुधार से लोगों का मनोबल और आध्यात्मिक स्तर उठाने के सर्वाधिक प्रभावशाली उपाय वे हैं, जिनका संबंध उच्च वर्ग के व्यक्तियों की शिक्षा से होता है। इन लोगों के पास समय होता है और अपने देशवासियों के मन पर उनका सहज प्रभाव होता है। इन वर्गों का शिक्षा–स्तर अंततः उठाकर आप समाज के विचारों और उसकी भावनाओं में कहीं महान और अधिक लाभदायक परिवर्तन ला सकेंगे, अपेक्षाकृत उसके जिसे आप अधिक संख्या वाले वर्ग पर सीधा प्रभाव डालकर लाने की आशा कर सकते हैं। इसके अलावा आप हमारी इस आतुरता से परिचित हैं कि हम चाहते हैं कि हमारे पास सुरूचिपूर्ण स्वभाव और योग्यता से सम्पन्न मूल निवासियों का ऐसा समूह हो, जो अपने देश के सिविल प्रशासन में और अधिक हिस्सा ले सकें तथा उसमें और उच्च पद पा सकें। अभी तक हमारी भारत सरकार की यह परिपाटी नहीं रही है।'' फिर भी हम अन्य अनेक पक्षों से सुनते हैं, हम उन लोगों से भी सुनते हैं जिन्हें यह बात और अच्छी तरह जाननी चाहिए कि जन–वर्ग को शिक्षित करने के लिए भारत के 14 करोड़ लोगों में (क्योंकि संख्या का कोई महत्व नहीं होता) यूरोप की कला और विज्ञान का रस घोलने के लिए कितनी आवश्यकता है और कितनी सुविधा प्राप्त है। हम वैसी ही अन्य सामान्य बातें सुनते हैं, जो इस विषय में भ्रामक धारणाओं से परिपूर्ण हैं। एक दर्शक भी शायद यह सोचने के लिए लालायित हो सकता है कि शिक्षा बोर्डों के हाथ में तो राज्य के समूचे संसाधन हैं, यह कैसा भ्रम हैं? स्थिति यह है उनके पास तो दाल में नमक के बराबर अति अल्प अंश है। वह तो इंग्लैंड के एक अकेले प्रतिष्ठान के लिए नियत राशि से भी कम है।

पैरा 9 – गत दस वर्षो के दौरान शिक्षा संबंधी प्रमुख तथ्यों का सिंहावलोकन आवश्यक है

पिछले कुछ पैराओं में जो तर्क प्रस्तुत किए गए हैं, उनसे यह पता चलता है कि प्रेसिडेंसी में शिक्षा संबंधी प्रयासों के दौरान जो प्रमुख लक्षण दृष्टिगोचर हुए है, उनका विश्लेषण और वास्तविक तथ्यों की सावधानी से पड़ताल करना उपयोगी होगा, यदि विश्वास पैदा करने के लिए पर्याप्त उद्यम किया जाए और निष्पक्षता बरती जाए तथा निराधार विवाद तथा सभी प्रकार की अटकलबाजियों को दूर करने के लिए दृढ़ निश्चय का परिचय दिया जाए। लगता है कि वर्तमान काल ऐसे सिंहावलोकन की विशेष अपेक्षा रखता है, क्योंकि 1850 में दूसरा दशक शुरू हो गया है और उसमें प्रेसिडेंसी के स्कूल एक सरकारी बोर्ड के पूर्ण नियंत्रण में आ गए हैं और यह स्पष्ट है कि चूंकि अब तक काफी सूचना इकट्ठी हो जानी चाहिए और वर्तमान सदस्यों में से अधिकतर उस काल के अधिकांश भाग में बोर्ड के सदस्य रहे हैं। अतः उन्हें आशा होगी कि अपने अनुभव का उल्लेख करके वे उन कतिपय अस्पष्ट पर अति दिलचस्प सवालों पर रोशनी डाल सकते हैं, जो निश्चय ही इस बोर्ड में उनके उत्तराधिकारियों के समक्ष समय–समय पर उठेंगे।

पैरा 10 – बंगाल और बंबई दोनों में स्व–स्फूर्त समान प्रणाली

अब हम शिक्षा संबंधी उन प्रमुख तथ्यों का यथारूप सूक्ष्म विवेचन करने का प्रयास करते हैं, जिन्होंने हमारा ध्यान आकर्षित किया है और हमारा विचार है कि जब उन तथ्यों को समुचित रूप से समझ लिया जाएगा, तो स्पष्ट रूप से दीख पड़ेगा कि भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में, जो अनेक विवादास्पद प्रश्न उठ खड़े हुए हैं, वे स्वयमेव सुलझते नजर आएंगे और अन्य प्रेसिडेंसियों तथा बंबई में सामान्यतः स्वयमेव एक ऐसी प्रणाली का विकास हो रहा है, जो देश की परिस्थितियों के नितांत अनुकूल है और जैसा कि स्व–स्फूर्त विकास दर्शाता है कि उसके सामान्य लक्षण नजर आ रहे हैं।

पैरा 11 – बंबई में शिक्षा संबंधी आंकड़े – अगले पृष्ठ पर दिए गए विवरण में उस काल का, जब शिक्षा प्रतिष्ठान पहले पहल 1840 में और अप्रैल 1850 में बोर्ड के नियंत्रण में आए, सरकारी शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों तथा स्कूलों की संख्या का तुलनात्मक विवरण दिया गया है। उससे पता चलता है कि उत्तरवर्ती काल में 4 अंग्रेजी तथा 83 वर्नाक्यूलर स्कूल जोड़े गए और छात्रों की संख्या में सामान्य वृद्धि शत प्रतिशत से भी अधिक हो गई। इस समय सरकारी शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की कुल संख्या 12,712 है। उनका अनुपात इस प्रकार है :

अंग्रेजी शिक्षा	1,699
वर्नाक्यूलर शिक्षा	10,730
संस्कृत शिक्षा	283

(सारणियों से तुलना : 1840 में 97 स्कूल थे और छात्रों की संख्या 5,491 थी, 1850 में स्कूलों की संख्या 185 थी और छात्रों की संख्या 12,712 थी)

पैरा 12 – वही विषय – लेकिन अति सक्षम अधिकारियों के आकलन के अनुसार बंबई प्रेसिडेंसी की आबादी एक करोड़ है। एक पिछली रिपोर्ट (1842–43, पृष्ठ 26) में उल्लिखित प्रशियाई जनगणना विधि से आकलित आंकड़ो के नियम को यदि हम लागू करें तो इतनी बड़ी जनसंख्या में 7 और 14 वर्ष के बीच लगभग 9,00,000 नर बच्चे स्कूल जाने योग्य होंगे। अतः इसका अर्थ कि इस प्रेसिडेंसी की सरकार स्कूल जाने योग्य हर 69 बच्चों में से एक से अधिक बच्चे को शिक्षा प्राप्ति का अवसर नहीं दे सकी है।

पैरा 13 – वही विषय – इसके अलावा यह स्वीकार किया गया है कि वर्नाक्यूलर स्कूल में दी गई शिक्षा अच्छे स्तर से कोसों दूर है। श्री बिलोबी के विवरण का अधिकांश भाग इन स्कूलों के घटिया स्वरूप और घटिया परिणामों की तीखी आलोचना से भरा पड़ा है। बोर्ड न केवल इस तथ्य को स्वीकार करता है, बल्कि उसने विगत अनेक वर्षों की ओर खास तौर पर संकेत दिया है और कुछ सक्षम प्रेक्षकों की भी राय है कि उसने वर्नाक्यूलर स्कूलों की एक बेहद भद्दी तस्वीर पेश की है। लेकिन जो त्रुटियां बताई गई हैं, उनको दूर करने के प्रत्यक्ष उपाय क्या हैं? श्री बिलोग्बी ने बहुत ही सही तरीके से बताया: ''स्कूल मास्टरों का एक उत्तम वर्ग, नारमल स्कूल, अधिक दक्ष पर्यवेक्षण, वर्नाक्यूलर साहित्य में वृद्धि–लेकिन ये वे सब विषय हैं, जिनके प्रति गत अनेक वर्षों से बोर्ड ध्यान देता रहा है और उनकी ओर अतिरिक्त खर्च के बिना एक कदम भी नहीं बढ़ाया जा सकता। लेकिन महामहिम की परिषद के पत्र से हमें यह पता चला है कि हो सकता है कि आने वाले काफी अर्से तक सरकार को ऐसा अधिकार प्राप्त न हो कि वह बोर्ड को अतिरिक्त आर्थिक सहायता दे सके।''

पैरा 14 – निष्कर्ष कि जन–शिक्षा का कोई साधन है ही नहीं – इन तथ्यों से यह स्पष्ट परिणाम निकलता है कि यदि 175 वर्नाक्यूलर स्कूलों को संगठन की समुचित दशा में रखने और 10,730 बच्चों को ठोस प्राथमिक शिक्षा देने के लिए पर्याप्त धन नहीं है, तो देश के 'जन–जन' को, 14 करोड़ लोगों को, बंबई प्रेसिडेंसी के 9,00,000 बच्चों को शिक्षित करने का समूचा प्रश्न ही निरर्थक हो जाएगा। उद्देश्य ऐसा नहीं है, जिसे सरकार पूरा या लगभग पूरा कर ले। शिक्षा बोर्डों को अनसुनी उदारता की काल्पनिक अटकलों में फंसकर सीमित व्यावहारिक कर्मक्षेत्र से विचलित नहीं होना चाहिए।

पैरा 15 – सीमित साधनों से संचालन की श्रेष्ठ प्रणाली के बारे में निदेशकों के कोर्ट के विचार – लगता है कि माननीय कोर्ट ने सदा ही उस निष्कर्ष को ध्यान में रखा है, जो पिछले पैरा में स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया गया है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि लोगों सुधार के लिए उनके शैक्षिक प्रयास केवल बहुत छोटे पैमाने पर ही किए जा सकते हैं, उन्होंने यह जरूरी समझा है कि वे अपनी विभिन्न सरकारों को बताएं कि सीमित साधनों से महानतम सफलताएं वास्तव में कैसे प्राप्त की जा सकती हैं? हम इस विषय में मद्रास सरकार को भेजी गई उनकी निषेधाज्ञाओं को उद्धत कर चुके हैं (पैरा 7) और उसी तिथि को उस सरकार को भेजे गए डिस्पैच में उसी आशय की भावना व्यक्त की गई है : ''हमारी यह उत्कृष्ट इच्छा है कि हम भारत के मूल निवासियों के उच्च वर्ग को ऐसे साधन उपलब्ध कराएं कि यूरोपीय विज्ञान की शिक्षा मिल सके और सभ्य यूरोप के साहित्य एक उनकी पहुंच हो सके। अवकाश के क्षणों तथा सहज प्रभाव से लैस वर्गों का जो स्वरूप प्रदान किया जा सके, वहीं अंततः समूचे जन–वर्ग का स्वरूप निर्धारित करेगा।''

पैरा 16 – कौन हैं भारत के उच्च वर्ग? जब यह बताया जा रहा है कि भारत में आबादी के केवल छोटे से भाग को सरकारी शिक्षा की परिधि में लाया जा सकता है और जब माननीय कोर्ट ने वस्तुतः तय कर लिया है कि यह भाग 'उच्च वर्ग' का होना चाहिए तो यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि उच्च वर्ग में कौन–कौन शामिल हैं। इसलिए यूरोपीय जिज्ञासु के लिए यह नितांत जरूरी है कि यह यूरोप की सादृश्यताओं से अपने मन को मुक्त कर ले जो अक्सर स्वयं को अनजाने में चुपके–चुपके आंग्ल–भारतीय अटकलों की ओर ले जाती हैं। यूरोप की, विशेषतः इंग्लैंड की, परिस्थितियों ने शिष्टाचार, धन, राजनीतिक व सामाजिक प्रभाव के सुस्पष्ट आधार पर उच्च एवं निम्न वर्ग के बीच एक लक्ष्मण रेखा खींच दी है। भारत में ऐसी कोई लक्ष्मण रेखा नहीं है। यहां सभी निरंकुश शासकों की भांति राजा की इच्छा सर्वोपरि थी, वह चाहे तो रंक को राजा बना सकता था, पर ऐसी कोई रेखा न होने के कारण यहां आचरण में सदैव भारी समानता रही है। अंग्रेजी धारणा के अनुसार भिखारी केवल पशु वार्डों में रहने के लिए या मुहताजखानों में बेगार करने के लिए उपयुक्त हैं, भारत में उसका सम्मान होता है और ब्राह्मणीय (वैदिक) विचारधारा के अनुसार आदरणीय है। उसके अनुसार वह एक ऐसा उच्च प्राणी है, जिसने ज्ञान प्राप्ति और देवता की अखंड आराधना के लिए जीवन के सभी प्रकार के भोग तथा मोह को त्याग दिया है।

पैरा 17 – भारत के उच्च – जो वर्ग अब भी भारत के प्रभावशाली और उच्च वर्ग समझे जाते हैं, उनकी श्रेणियां इस प्रकार हैं :

प्रथम – जमींदार और जागीरदार, भूतपूर्व सामंतों के प्रतिनिधि और देशी शक्तियों के उच्च प्राधिकारी, और वे जिन्हें क्षत्री वर्ग कहा जाता है।

द्वितीय – व्यापार या वाणिज्य से धन अर्जित करने वाले अथवा वैश्य वर्ग।

तृतीय – सरकार के उच्च कर्मचारी।

चतुर्थ – ब्राह्मण, उनके साथ भले ही लम्बे अंतराल के बाद रहे हों, उच्च जातियों के उन कातिबों या मुंशियों को जोड़ा जा सकता है जो कलम का खाते हैं, यथा बंबई के प्रभु और शैनवी, बंगाल के कायस्थ बशर्तें कि शिक्षा या पद की दृष्टि से उनका रुतबा हो।

पैरा 18–ब्राह्मण सबसे अधिक प्रभावशाली – इन चार वर्गों में अतुलनीय दृष्टि से सर्वाधिक प्रभावशाली, सर्वाधिक संख्या में और कुल मिलाकर, जो सबसे आसानी से सरकार द्वारा काम में लाया जा सकता है, वह है ब्राह्मण वर्ग। पूरे भारत में यह बात सर्वविदित है कि पुराने जागीदार या क्षत्री वर्ग हमारे राज में बराबर पतनोन्मुख हैं। उनका पुराना व्यवसाय समाप्त हो गया है और उन्होंने नया व्यवसाय अपनाने में कोई रूचि या क्षमता नहीं दिखाई और शांति का पाठ नहीं पढ़ा। प्रेसिडेंसी में

भूस्वामियों के इस अभिजात वर्ग को संबल देने के श्री एलफिंस्टोन और उनके उत्तराधिकारियों के प्रयत्न बुरी तरह विफल हुए। इस जाति के लिए नागरिक सम्मान तथा शिक्षा द्वारा उन्नति के द्वार खोलने के सभी प्रयासों पर भी पानी फिर गया। इस जाति को और कुछ भी नहीं सुहाता। वह तो झूठी शान–शौकत और फिजूलखर्ची में मस्त रहती हैं। वह तो हिन्दुस्तान के मैदानी इलाकों में अपने पूर्वजों की विजय–गाथा की यादों में खोई रहती हैं। ना ही कुछ अपवादों को छोड़कर वैश्य वर्ग में उच्च शिक्षा के प्रभाव के लिए बहुत बड़ा मार्ग खुल सका है। यों तो सभी देशों में होता है पर भारत में अधिक से अधिक सभ्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा व्यापारियों के नौजवान जल्दी ही शिक्षा समाप्त कर देते हैं, ताकि वे अपने व्यवसाय के अनुसार या बाजार का विशेष अनुभव प्राप्त कर सकें। अंतिम वर्ग राज्य के कर्मचारियों का है। सरकार के संपर्क में आने वाले बहुत से लोगों पर उनका भारी प्रभाव होता है लेकिन उनसे भी कहीं अधिक संख्या वाले उन लोगों पर उनका कोई प्रभाव नहीं है, जो सरकारी सेवा में नहीं है और जनता में उनकी साख वैसी ही है, जैसी कि इंग्लैंड के सरकारी कर्मचारियों की, जिनके बारे में बड़े भद्दे ढंग से कहा जाता है कि वे तो सरकार के भाड़े के टट्टू हैं।

पैरा 19 – ब्राह्मणों की विपत्रता – उपरोक्त विश्लेषण यद्यपि लम्बा दीख पड़ता है, परन्तु फिर भी वह कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्षों के लिए अपरिहार्य है। पहला तो यह है कि उससे पता चलता है कि शिक्षा प्रचार के लिए जिस वर्ग का उपयोग प्रभावशाली वर्ग के रूप में सरकार कर सकती है, वह है ब्राह्मण और लगभग उनकी जैसी उच्च जातियां। लेकिन ब्राह्मण तथा ये उच्च जातियां अधिकांशतः अति दरिद्र हैं। भारत के अनेक भागों में तो ब्राह्मण 'भिखारी' का पर्याय बन गया है।

पैरा 20 – धनी वर्ग फिलहाल उच्च शिक्षा का समर्थन नहीं करेगा – हम देख सकते हैं कि 24 अप्रैल 1850 के अपने पत्र मैं माननीय न्यायमूर्ति की परिषद ने, जो कठोर आदेश दिया था, उसे लागू करना कितना निराशाजनक है। सरसरी तौर पर वह स्वयं में कितना सत्याभाषी और समुचित दीख पड़ता है। वस्तुतः उसका स्वयं बोर्ड ने बहुधा प्रयास किया है, अर्थात उच्च शिक्षा को कठोरता से उस धनी वर्ग तक सीमित रखा जाए, जो उसका खर्च उठा सकता है और असाधारण बुद्धिमत्ता वाले नोजवानों तक भी। जब भी बोर्ड ने इस प्रकार के दृष्टिकोण को लागू करने का प्रयास किया है, तो सदैव उसका उत्तर यही मिला है कि धनी वर्ग उच्च शिक्षा के प्रति पूर्णतः उदासीन रहा है और गरीबों में से असाधारण बुद्धिमत्ता को खोजने का कोई मार्ग तभी निकाल सकता है, जब स्कूली शिक्षा द्वारा उनके गुणों को परखा जाए और उनका विकास किया जाए। इसमें संदेह नहीं कि धनी वर्गों का एक अल्पांश अपनी रुचि दिखा रहा है और उसने उच्च शिक्षा के लाभों को स्वीकार किया है। वह वर्ग अधिकतर बंगाल में दिख पड़ता है, जहां सरकार ने अधिक लम्बे अर्से से शिक्षा का प्रसार किया है। बंबई में वह उतना नहीं दिख पड़ता। हमारे विचार में यह अनिवार्य है कि इस अनुभूति के साथ–साथ ऐसे वर्ग की संख्या बढ़ेगी ही कि उच्च उपलब्धियां विशिष्टता प्रदान करती हैं। उनके कारण सामाजिक समता के आधार पर यूरोपीयों से निकट संपर्क स्थापित होता है। लेकिन फिलहाल सामान्य प्रस्थापना के रूप में हम संतुष्ट है कि यूरोप की कला और विज्ञान संबंधी अकादमीय शिक्षा को भारत के प्रति संपन्न वर्गों के छात्रों अथवा पैसे पर आधारित नहीं किया जा सकता।

पैरा 21 – निम्न जातियों की शिक्षा के बारे में प्रश्न वर्षो के अनुभव के आधार पर हमने इन तथ्यों से यह व्यावहारिक निष्कर्ष निकाला है कि उच्च जातियों के जो निर्धन बच्चे हमसे शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए एक अति चौड़ा द्वार खोला जाना चाहिए। लेकिन पुनः यहां भी एक और दिमाग चाटने वाला प्रश्न उठता है और उसकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि गरीबों के बच्चों को बेरोकटोक सरकारी संस्थाओं में प्रवेश दिया जाता है, तो वह कौन–सी बाधा है, जो ढेड़, महार आदि जैसी सभी हेय जातियों को इन संस्थाओं की चारदीवारी के भीतर भारी संख्या में आने से रोक सकती है।

पैरा 22 – हिन्दुओं के सामाजिक पूर्वाग्रह – इसमें संदेह नहीं कि यदि इन दलितों का बंबई में कोई वर्ग बनाया जाए, तो बोर्ड की सेवा में रत प्रोफेसरों तथा मास्टरों के मार्गदर्शन में उन्हें समाज में किसी से भी बेहतर बुद्धिमत्ता वाले व्यक्तियों में परिणत किया जा सकता है। तब वे जो योग्यता प्राप्त करेंगे, उसके बल पर वे देशज प्रतिभा के लिए खुले सर्वोच्च पदों तक पहुंच सकेंगे और कोई बाधा उनकी इस इच्छा को दबा नहीं सकेगी। वे जज बन सकेंगे, ग्रांड जूरी और साम्राज्ञी के शांति–कमीशन के सदस्य बन सकेंगे। अनेक उदार लोगों का विचार है कि ब्रिटिश सरकार के भीतर यह तो अनुदारता और निर्बलता की पराकाष्ठा है कि वह इन पूर्वाग्रहों के आगे झुक जाए कि ऐसी नियुक्तियां, तो हिन्दू समाज के भीतर कुंठा पैदा करेंगी। अतः जाति के बंधनों पर खुला प्रहार किया जाना चाहिए।

पैरा 23 माउंट स्टुअर्ट एलफिंस्टन के विवेकपूर्ण विचारों का उद्धरण – लेकिन प्रस्तुत है भारत के पक्षधर तथा अति उदारमना तथा विशाल हृदय प्रशासक श्री एलफिंस्टन के विवेकपूर्ण विचार जो सही कार्य प्रणाली की ओर संकेत करते हैं। वह कहते हैं, ''देखा गया है कि मिशनरी लोगों को निम्नतम जाति के छात्र सर्वोत्तम लगते हैं, लेकिन हमें इस बारे में सतर्क रहना ही होगा कि हम उस जाति के लोगों को कोई विशेष प्रोत्साहन किस प्रकार प्रदान करते हैं। वे न केवल अति हेय हैं, बल्कि वे समाज के बड़े–बड़े विभाजनों के अति अल्पसंख्या वाले लोगों में से हैं। आशंका है कि यदि हमारी शिक्षा प्रणाली ने सबसे पहले अपनी जड़ें उनके भीतर जमाई, तो वह कभी और विकास नहीं करेगी। हमारे सामने एक ऐसा वर्ग आ सकता है, जो उपयोगी ज्ञान में तो शेष से बेहतर होगा पर वह उन जातियों की घृणा का पात्र हो जाएगा, जिन्हें हम नई उपलब्धियों वाले वर्ग से हीन समझने लगेंगे। ऐसी स्थिति वांछनीय होगी, जब यदि हम इसी पर संतोष कर लें कि हम अपनी शक्ति का आधार अपनी सेना या आबादी के एक हिस्से की कुर्की को बना लें, लेकिन उसका हर ऐसे प्रयास से कोई मेल नहीं खाता, जो और अधिक व्यापक आधार पर टिकी हो।''

5. इस तरह यह स्पष्ट है कि 1855 तक बंबई प्रेसिडेंसी में यदि दलित जातियों के लिए कोई स्कूल नहीं खोले गए, तो यह अंग्रेज सरकार की सोची समझी नीति थी कि शिक्षा की सुविधा उच्च जातियों के गरीबों विशेष रूप से ब्राह्मणों तक ही सीमित रखी जाएं। यह दूसरी बात है कि यह नीति सही थी या गलत। सच्चाई यह है कि इस अवधि में सरकार ने दलित जातियों को शिक्षा के लाभ से वंचित रखा।

साभार
बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर
खण्ड–4, (पृष्ठ सं० 123 से 146 तक)
डॉ. अम्बेडकर

शेष भाग अगले अकं में ....

जाति बदलना समाधान नहीं

सन् 1922 के आसपास दिल्ली में प्राचीन भारत के संपादक देवीदास जी ने जटिया चमारों को उन्होंने यादव क्षत्रिय बताया था। जटिया चमारों को यादव क्षत्रिय बनाने के लिए बकायदा एक आंदोलन भी चलाया गया था। इसी सिलसिले में आगरा से एक 'यादव' नामक पुत्र भी निकाला गया। इसमें अहीरों को चुनौती दी गयी थी कि वे असली यदुवंशी नहीं है। अलसी यदुवंशी जटिया हैं। अब इन्होंने अपना गोत्र 'जाटव' गढ़ा। बाद में डॉ. मानिक चन्द और उनके साथियों ने मिलकर सर्व सममति से फैसला किया कि वे सभी अपने नाम के आगे 'जाटववीर' लगायेंगे। 1920 में उनकी अध्यक्षता में भारत वर्षीय जाटववीर युवा परिषद् का गठन हुआ। इस परिषद् ने 26 अक्टूबर 1938 को इंग्लैंड में भारतीय मामलों में मंत्री लार्ड जटलैंड को एक ज्ञापन दिया था। उस ज्ञापन में यह माँग की गयी थी आगरा के जटिया चमारों को स्थाई रिकार्ड में चमार न लिखा जाये। उन्हें अब 'जाटव' लिखा जाये, क्योंकि 'चमार' एक अपमान जनक शब्द है।

लेकिन यदि हम गहराई से देखे तो इतनी लम्बी–चौड़ी कवायद के बाद भी आखिर हुआ कुछ नहीं। 'चमार' शब्द ने इन नव जाटवों का पीछा नहीं छोड़ा। अब वे जाटव चमार हैं।

उधर 1930 के आसपास चमारों के गोत्र चानोर के नेता दिल्ली निवासी मुंशी किशन सहाय थे। उन्होंने पाया कि 'चानोर' गोत्र राजपूतों, गूजरों, जाटों में भी है, अतः उन्होंने चमार, चानोरों का उत्तम क्षत्रिय घोषित करने के प्रयास किया। 'गहलोत' गोत्र के चमारों ने खुद को 'गहलोत क्षत्रिय' घोषित करने के लिए आन्दोलन किया। इसके बाद सन् 1941 की जनगणना में कइयों ने खुद को 'सूर्यवंशी', 'चंद्रवंशी' लिखवाया। लेकिन आज वे सूर्यवंशी चमार कहे जाते हैं।

इसी तरह का एक प्रयास जैसवार गोत्र के चमारों द्वारा किया गया था। वे अपने आपको 'जैसवार राजपूत' कहलवाने लगे थे। इन्होंने तो अपनी एक 'जैसवार राजपूत महासभा' भी रजिस्टर्ड करवाई थी। जब सवर्णों ने इन्हें भी 'जैसवार चमार' कहा तो कइयों ने मानहानि के मुकद्दमें भी किये थे। उपरोक्त आन्दोलन से जुड़े लोगों के वंशज आज समाज में तो चमार हैं ही, सरकारी अभिलेखों में भी वे चमार वर्ग में ही हैं।

अपने ऊपर हो रहे अमानवीय अत्याचारों से बचने के लिए ये प्रयास जाति बदलकर ही नहीं हुए, बल्कि धर्म बदलकर भी किये गये, लेकिन मिला क्या? चमार ईसाई बने तो वहाँ उनके नाम के साथ 'मसीह' शब्द जोड़ दिया। वे आर्य समाजी बने तो उन्हें 'महाशय जी' कहा जाने लगा। वे सिख बने तो वहाँ उन्हे 'मजहबी रामदासी' उपनाम मिले। वे मुसलमान बने तो वहाँ उन्हें 'सक्का', 'लाल बेगी' जैसे नाम मिले। कहने का अर्थ यह कि इनकी पुरानी पहचान वहाँ भी किसी न किसी रूप में कायम रखी गयी। इनके लाख चाहने पर भी इन्हें किसी ने अपने वर्ग में नहीं खपाया। हर कहीं इनके ऊपर दमन का चक्र घूमता रहा।

1920 की रिपोर्ट के मुताबिक पैंतालिस हजार चमारों को ईसाई धर्म में बसतिस्मा दिया जा चुका था। 1920 से इन पंक्तियों के लिखे जाने तक का पता नहीं कितने चमार घोषित–अघोषित रूप से ईसाई बन चुके हैं। 1920 से ही पूरे भारत के 10,811 चमार मुसलमान धर्म की दीक्षा ले चके हैं। उधर सिख धर्म में चमारों की बहुत बड़ी संख्या प्रवेश कर चुकी है। एक रिपोर्ट के अनुसार हर दूसरा निहंग चमार है। हजारों चमार आर्य समाजी बन चुके हैं।

जाति को हथियार बना लो

सवाल उठता है कि ऐसे प्रयासों से आखिर मिला क्या? क्या वहाँ पर भी सामाजिक समानता हासिल हुई? यदि वहाँ भी यहीं सब सहना है तो फिर अपने भाइयों से दूर जाने से क्या फायदा? मैं चमार भाइयों से मार्मिक अपील करना चाहूँगा कि भाइयों आपके महान पुरखों ने घोर उत्पीड़न सहते हुए गाँवों की सीमाओं से बाहर रहना स्वीकार कर लिया था लेकिन वे ब्राह्मण धर्म की गंदगी, वर्ण–व्यवस्था से बाहर ही रहे। आप क्यों सूर्यवंशी बनने के प्रलोभन में फँसते हो? क्यों आर्य समाजी बनते हो? बेहतर होगा कि आप अपनी जाति को ही हथियार बनाओं। हमारा इतिहास कितना गौरवशाली है? आप कितने महान लोगों की संताने हैं। आपके बीच कितने महान संत और राजनीतिज्ञ पैदा हुए? क्यों न इसी जाति को अपना हथियार बनाते हुए अपनी चहुमुंखी उन्नति करें।

साभार
चमार जाति इतिहास और संस्कृति
(पृष्ठ सं० 144 से 145 तक)
एस. एस. गौतम
डॉ. आर.एम.एस. विजयी

अशोक विजयदशमी

वर्तमान में दशहरे का स्वरूप

यह पर्व आश्विन मास की शुक्ल–पक्ष की दशमी को मनाया जाता है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार इसी दिन रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई करके महाराजा रावण पर विजय प्राप्त की थी। अर्थात् राम ने रावण की हत्या की थी। विजयदशमी को राष्ट्रीय पर्व की मान्यता प्राप्त है। वैसे मुख्य रूप से यह हिन्दू वर्ण–व्यवस्था के आधार पर क्षत्रिय का त्योहार माना जाता है क्योंकि यहा वर्ण–व्यवस्था के आधार पर ही सब चीजों का बंटवारा निर्धारित है चाहे वह जन्म, कर्म हो या फिर रस्मो–रिवाज या त्योहार आदि ।

दशमी के दिन लगातार दस दिनों तक धमूधाम के साथ निकाली जाती है और रावण वध का प्रदर्शन होता है तथा मेले–तमाशे का आयोजन और दुर्गा पूजन होता है। उसी दिन हिन्दुओं के लिए नीलकठ पक्षी का दर्शन बड़ा शुभ माना जाता है।

दशहरे से जुड़ी हिन्दू मान्यताएं

दशहरे के सम्बंध में कही जाने वाली कुछ कथाएं इस प्रकार हैं–

1. एक बार पार्वती जी ने शंकर से पूछा कि ''लोगों में दशहरे का त्योहार प्रचलित है, इसका क्या फल है?'' तो शिवजी ने बताया कि ''आश्विन शुक्ल दशमी को सायंकाल में तारा उदय होने के समय 'विजय' नामक काल होता है जो सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला होता है। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए राजा को युद्ध के लिए इसी समय प्रस्थान करना चाहिए।'' इसकी पुष्टि हिन्दू ग्रंथ ज्योतिर्निबन्ध से भी होती है। इस दिन यदि श्रवण नक्षत्र का योग हो तो और भी शुभ है। रामचन्द्र जी ने इसी 'विजय–काल' में लंका के महाराजा रावण पर विजय पाई थी। इसलिए यह दिन हिन्दुओं के लिए बहुत बड़ी खुशी का पवित्र दिन माना जाता है। और क्षत्रिय लोग इसे अपना प्रमुख त्योहार मानते है क्योंकि रामचन्द्र भी क्षत्रिय थे।

हिन्दुओं की ऐसी मान्यता है कि शत्रु से युद्ध करने का प्रसंग न होने पर भी इस विजय–काल में राजाओं को अपनी सीमा का उल्लंघन अवश्य करना चाहिए । अपने तमाम दल–बल को सुसज्जित करके पूर्व दिशा में जाकर शमी वृक्ष का पूजन करना चाहिए । क्योंकि यह शमी वृक्ष सभी पापों को नष्ट करने वाला है तथा शत्रुओं को भी पराजय देने वाला है। इस वृक्ष ने अर्जुन के धनुष को धारण किया था और रामचन्द्र के लिए भी विजय की घोषणा की थी। पार्वती ने शमी वृक्ष के बारे में स्पष्टीकरण चाहा तो शिवजी ने उत्तर दिया ''दुर्योधन ने पांडावों को जुए में हराकर इस शर्त पर वनवास दिया था कि वे बारह वर्ष तक जैसे चाहें वैसे प्रकट रूप से वन में रह सकते हैं। लेकिन एक वर्ष बिलकुल अज्ञातवास में रहना होगा। यदि इस वर्ष में उन्हें कोई पहचान लेगा तो उन्हें बारह वर्ष और भी वनवास भोगना पड़ेगा। उस अज्ञातवास के समय अर्जुन अपना धनुष बाण इसी शमी वृक्ष पर रखकर राजा विराट के यहाँ बृहन्नला (हिजड़ा) के वेश में रहे थे। विराट के पुत्र कुमार ने गौओ की रक्षा के लिए बृहन्नला को अपने साथ लिया। शमी ने अर्जुन के शास्त्रों की रक्षा की थी और अर्जुन ने सही समय पर शस्त्र उठाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी।''

विजय दशमी के दिन रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान करने के समय शमी वृक्ष ने कहा था कि आपकी विजय होगी। इसलिए उसी विजय काल में ही शमी वृक्ष की भी पूजा का महत्व है।

2. एक बार राजा युधिष्ठिर ने भी कृष्ण से विजयदशमी के बारे में पूछा तो कृष्ण ने बताया कि– ''हे राजन! विजयदशमी के दिन राजा को स्वयं अलंकृत होकर अपने दासों और हाथी, घोड़ों का श्रृंगार करना चाहिए तथा गाजे–बाजे के साथ मंगलाचरण करना चाहिए। उसे इस दिन अपने पुरोहितों को साथ लेकर पूर्व दिशा में प्रस्थान करके अपनी सीमा से बाहर जाना चाहिए और वहां शस्त्र–पूजा करके अष्टदिग्पालों तथा पार्थ देवता की वैदिक मंत्रों से पूजा करनी चाहिए। शत्रु की मूर्ति पुतला बनाकर उसकी दाती में बाण भेदना चाहिए तथा उसी समय पुरोहित से मंत्रों का उच्चारण करवाना चाहिए। ब्राह्मण की पूजा करके हाथी, घोड़ा, शस्त्र आदि का निरीक्षण करना चाहिए। यह सब क्रिया सीमान्त में करके अपने महल को वापस आना चाहिए जो राजा इस विधि से पूजन करके विजयदशमी की रस्म पूरी करता है वह सदा अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करता है।'' हिन्दू धर्म में दशहरा (विजयदशमी) के लिए उपरोक्त प्रकार की मान्यताएं और कथाएं प्रचलित और मान्य हैं। किन्तु यह उनका अपना दृष्टिकोण है। जो हमने आपकी जानकारी के लिए उल्लेखित किया है।

वास्तविकता

आइए, अब हम दशहरे पर एक तर्कशील एवं बुद्धिवादी दृष्टिकोण रखते हुए उसके वास्तविकता स्वरूप को देखने–परखने का प्रयास करें।

भारत में दशहरे को हिन्दू लोग प्रायः दो तरीको से मनाते हैं। एक राम द्वारा रावण पर जीत कराके तथा दूसरे बड़े पैमाने पर देवी (दुर्गा) का पूजन करके। एक ही त्योहार में दोनों बातों का इतने बड़े पैमाने पर साझा प्रदर्शन होना किसी के लिए भी वास्तविक सच्चाई (कारण) जानने की उत्सुकता के साथ–साथ बहुत कठिनाई पैदा कर देते है। क्योंकि हिन्दू लोग स्वयं कारण कुछ बताते हैं लेकिन काम कुछ और ही करते नजर आते हैं। इस उपलक्ष्य में दस दिन पहले से ही हर गांव, मोहल्ले, गली, चौक, बाजार में एक जगह रामलीला का प्रोग्राम तो होता ही है। लेकिन उससे भी आश्चर्य की बात यह है कि इस दशहरा की तैयारी में महीनों पहले से प्रत्येक गांव, मोहल्ले, गली, चौक, बाजार में जितना भी संभव हो सके उतनी संख्या में दुर्गा की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं । इन मूर्ति स्थलों की संख्या रामलीला स्थलों से दस गुना ज्यादा होती है। आम तौर पर देखने में यह दुर्गा माता का ही कोई महत्वपूर्ण त्योहार नजर आता है लेकिन वास्तविकता रूप में इसे लोग राम से जोड़ते हैं। इस भूल–भूलैया की स्थिति से बाहर निकलकर हम जानने का प्रयास करेंगे कि इस त्योहार के पीछे की वास्तविक सच्चाई क्या है? दशहरा को लोग विजयदशमी का नाम क्यों देते हैं? इसके पीछे का इतिहास क्या है? तथा इसका इस देश के मूलनिवासी बौद्धों से क्या सम्बंध है ?

सम्राट अशोक और विजयदशमी का इतिहास

दशहरें के सम्बन्ध वास्तव में भारत के महान चक्रवर्ती सम्राट अशोक से है। महाराजा अशोक विश्वविख्यात महान शासक थे। उनका साम्राज्य बहुत विशाल था। किसी भी राज्य विस्तार के हिसाब से उनकी महानता को मापना ठीक नहीं। उनकी महानता तो उनके मानववादी सिद्धान्तों के कारण है। इन्हीं उच्च सिद्धान्तों के आधार पर ही उन्होंने शासन किया। अपने दसवें धम्म अभिलेख में उन्होंने कहा कि ''राजा की कीर्ति का मूल्यांकन प्रजा की नैतिक उन्नति से किया जा सकता है।'' यही कारण था कि सम्राट अशोक ने युद्ध का विनाशकारी मार्ग छोड़कर बुद्ध के शांतिपूर्ण मार्ग का अनुसरण किया ।

उन्होंने अपनी प्रजा को सद्धम्म के कल्याणकारी मार्ग पर चलने का आदेश दिया और अहिंसा तथा सदाचार को अपने जीवन का आदर्श बनाया। उनका उद्देश्य था प्रजा की सर्वोपरि उन्नति। वास्तव में वह समस्त विश्व के प्राणियों का कल्याण चाहने वाले थे। जिसके लिए उन्होंने अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ी। भारत की गौरवशाली कला और संस्कृति की शुरुआत भी सम्राट अशोक के समय से ही हुई। धम्म और बौद्ध स्तूपों की स्थापत्य कला इसके सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं। उन्होंने आज से दो हजार वर्ष पूर्व भारत और पूरे विश्व को वही पाठ पढ़ाया जिसे आज संसार के सभी शांतिप्रिय देश संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से संचालित व क्रियान्वित करना चाहते हैं।

ऐसे महान सम्राट अशोक का जन्म इस पावन भारत भूमि पर अशोकावदान ग्रंथ के अनुसार लगभग 304 ईसा पूर्व चैत्र मास में शुक्ल–पक्ष की अष्टमी को हुआ था दिव्यावदान में अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी मिलता है और उनके पिता का नाम बिन्दुसार था। जो मगध देश के राजा थे। जिनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। अशोक बचपन से कही तीव्र और कुशाग्र बुद्धि का धनी था। बड़ा होने के नाते शीघ्र ही उसने सभी शास्त्रों का ज्ञान अर्जित कर लिया था। अशोक के सौतेले भाईयों में सबसे बड़े भाई का नाम सुसीम था। इसलिए राजा का उत्तराधिकारी होने का हक उसी का था किन्तु अशोक की तीव्र बुद्धि को देखकर सभी अमात्य अशोक को ही उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में थे। इससे असमंजस में पड़े राजा को सभी राजकुमारों की परीक्षा लेकर भी सुसीम और अशोक दोनों को उत्तराधिकारी बनाना पड़ा। महाराजा बिन्दुसार ने सुसीम को उपराजा बनाकर तक्षशिला भेजा और अशोक को उज्जैन के लिए रवाना किया। उज्जैन के रास्ते में ही विदिशा नगरी पड़ती थी। अशोक ने उज्जैन जाते समय यहीं पड़ाव डाला था। यहीं पर स्कन्धमित्रा की अशोक से मुलाकात हुई और स्कन्धमित्रा को देखकर अशोक बहुत प्रभावित हुआ। अशोक ने अपने आमात्यों से कहकर उसके माता–पिता का पता लगवाया और स्कन्धमित्रा को पसन्द करने की बात कही। यह जानकर नगर सेठ ने अपनी कन्या का विवाह कुमार अशोक के साथ कर दिया। वास्तव में यह कन्या शाक्य कुल से ही थी किन्तु परिस्थितिवश उसके पूर्वज विदिशा में आकर बस गए थे। यही देवी, विदिशा महादेवी के नाम से जानी जाती है। किन्तु वर्तमान सूत्रों के अनुसार महान अशोक की रानी का नाम असंधिमित्रा बताया जाता है।

अशोक को उज्जैन के लिए रवाना किया। उज्जैन के रास्ते में ही विदिशा नगरी पड़ती थी। अशोक ने उज्जैन जाते समय यहीं पड़ाव डाला था। यहीं पर स्कन्धमित्रा की अशोक से मुलाकात हुई और स्कन्धमित्रा को देखकर अशोक बहुत प्रभावित हुआ। अशोक ने अपने आमात्यों से कहकर उसके माता–पिता का पता लगवाया और स्कन्धमित्रा को पसन्द करने की बात कही। यह जानकर नगर सेठ ने अपनी कन्या का विवाह कुमार अशोक के साथ कर दिया। वास्तव में यह कन्या शाक्य कुल से ही थी किन्तु परिस्थितिवश उसके पूर्वज विदिशा में आकर बस गए थे। यही देवी, विदिशा महादेवी के नाम से जानी जाती है। किन्तु वर्तमान सूत्रों के अनुसार महान अशोक की रानी का नाम असंधिमित्रा बताया जाता है।

अशोक असंधिमित्रा के साथ उज्जैन पहुँचे वहाँ की शासन स्थिति ठीक हुई। विवाह के एक वर्ष बाद रानी ने पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम महिंद (महेन्द्र) रखा गया । इसके दो वर्ष के बाद एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम संघमित्रा (संघमित्रा) रखा गया ।

कुछ समय पश्चात महाराज बिन्दुसार मरणासन्न अवस्था पर पड़ गए तो उस समय पाटलीपुत्र में न तो सुसीम था और न ही अशोक। महाराज बिन्दुसार की इच्छा थी की इस समय सुसीम ही उनका उत्तराधिकारी बने किन्तु उसके आमात्यों के विचारानुसार केवल अशोक ही योग्य उत्तराधिकारी हो सकता था। उन्होंने अशोक को तुरन्त उज्जैन से पाटलिपुत्र आने का संदेश भिजवाया । अशोक सन्देश पाते ही पाटलिपुत्र आ गया सुसीम को भी संदेश दिया गया था किन्तु वह अज्ञात कारणों से समय पर नहीं आ सका।

महाराजा ने जब देखा कि सुसीम का कहीं कोई अता–पता ही नहीं, केवल अशोक ही उसके पास है। राजा ने अपना अंतिम समय नजदीक आता देख अपने सिर से राजमुकुट उतारा और अशोक के सिर पर रख दिया। इस प्रकार आमात्यों के प्रयत्नों से अशोक को सम्राट का पद प्राप्त हुआ। अशोक के राजा बनते ही राजमहल मे खुशियाँ छा गई। अशोक सन् 273 ईसा पूर्व के लगभग 34 वर्ष की आयु में मगध के राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ। जनता को अशोक की सामर्थ्य और शक्ति पर पूरा विश्वास था ।

छा गई। अशोक सन् 273 ईसा पूर्व के लगभग 34 वर्ष की आयु में मगध के राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ। जनता को अशोक की सामर्थ्य और शक्ति पर पूरा विश्वास था ।

अशोक के सम्राट बनने से राजधानी पाटलिपुत्र में उत्सव मनाया जाने लगा, किन्तु उपराजा सुसीम को जब यह समाचार मिला, तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने अपने सैनिको के साथ राजसिंहासन को बलपूर्वक हथियाने के लिए तक्षशिला से पाटलिपुत्र की ओर कूच कर दिया। कहते हैं कि अशोक ने पाटलिपुत्र के बाहर अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित सैनिकों को बिठा दिया। जैसे ही राजकुमार सुसीम ने पाटलिपुत्र की सीमा में प्रवेश किया अशोक के सैनिको ने उसे घेर कर मार गिराया। इस प्रकार अशोक के समक्ष अब कोई राज्य का दावेदार नही रहा और वह मगध के एकछत्र महाराजा बन गए ।

सम्राट अशोक के बड़े भाई उपराजा सुसीम की मृत्यु के समय उसकी रानी सुमना गर्भवती थी। उसने सोचा कि अशोक के सैनिक उसे भी मार डालेंगे इसलिए अपनी जान बचाने और गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए उसने एक चांडाल के घर जाकर शरण ली । कष्टों में जीवन निर्वाह करती हुई कुछ दिनो पश्चात् न्यग्रोध (वट=बरगद) के पेड के नीचे उसने एक पुत्र को जन्म दिया। गांव के एक मुखिया ने राजपरिवार के सदस्य होने के कारण माता–पुत्र दोनो की सात वर्ष तक अपने संरक्षण में रखकर सेवा की। न्यग्रोध वृक्ष के नीचे जन्म लेने के कारण इस बालक का नाम 'न्यग्रोध कुमार' पड़ा ।

उसके श्रामणेर होने के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उस युग में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रचार था। अच्छे–अच्छे बौद्ध भिक्खु अपने त्यागमय जीवन और विद्वत्ता से लोगों को बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षित कर रहे थे। अतः 'न्यग्रोध' भी विद्वान बौद्ध भिक्खुओं के संपर्क में रहकर बौद्ध बन गया । श्रीलंका के महावंस नामक बौद्ध ग्रंथ में न्यग्रोध के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता है।

साभार
त्योहारों के रहस्य, रोशन बौद्ध
(पृ.सं. 11 से 15 तक)

बाबा साहेब के अनुसार –''दीवाली का त्योहार लक्ष्मी पूजन का त्योहार है। 22 प्रतिज्ञाओं के पालकों का लक्ष्मी से कोई लेना देना नहीं है। वर्तमान में मनाए जाने वाला दीवाली का त्योहार बौद्धों का त्योहार कैसे हो सकता है ? इसे अपनाने के लिए हमें इसकी गहराई (मूलस्त्रोत) तक जाना होगा।''

दीपाली से सम्बंधित इस विमर्श के बाद अब हम उन तथ्यों पर विचार करेगें, जो हमें दीपावली के मूल स्त्रोत तक ले जा सकते है। ग्रंथों की प्रमाणिकता के आधार पर यह स्वीकार करने में कोई परहेज नहीं है कि जिस दीवाली को हमारे देश के लोग इतनी धूम–धाम से मनाते है। उसकी शुरूआत महान बौद्ध सम्राट अशोक के द्वारा की गई। इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि प्रसिद्ध चित्रकार एवं महान बौद्ध चिंतक बौद्धाचार्य शान्ति स्वरूप बौद्ध के द्वारा लिखित बौद्धाचार्य–प्रकाश तथा प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान मधुकर पिपलायन द्वारा लिखित 'महान अशोक' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ से भी होती है। जिसका विस्तृत हमें महान बौद्ध गंथ महावंश से प्राप्त है–

सिद्धार्थ गौतम को पैतीस वर्ष की आयु में बुद्धत्व प्राप्त हुआ और वे बुद्ध हो गए। भगवान बुद्ध बुद्धत्व लाभ होने के बाद से 45 वर्ष तक मानव कल्याण हेतु उपदेश करते रहे और उन्हें 80 वर्ष की आयु में महापरिनिर्वाण प्राप्त हुआ। उनका दिया हुआ बौद्ध धर्म विकास की गति कम न हुई।

बौद्ध धम्म के प्रति सम्राट अशोक की असीम श्रद्धा थी। धम्म शिक्षा लेने के बाद उसने निश्चय किया कि संसार के सभी प्राणी सुखी रहें। इसलिए उसने प्राणी मात्र के कल्याण के उद्देश्य से ही अपना संपूर्ण जीवन बौद्ध धम्म की सेवा में समर्पित करने की प्रतिज्ञा की और एक दिन उसने महाथेर मोग्गलिपुत्त–तिस्स से पूछा–

'भन्ते धम्म के कितने स्कंध हैं ?

महाथेर ने समझाते हुए कहा–'तीनों पिटकों, पांचों निकायों और नौ अंगो में 84000 (चौरासी हजार) धम्म स्कन्ध हैं। अर्थात् भगवान बुद्ध ने अपने जीवन के 45 वर्षो में 84000 उपदेशों की घूम–घूमकर मानव कल्याण हेतु देशना की है। यह सुनकर महाराजा अशोक ने प्रण किया कि मै 84000 धम्म स्कंधों की स्मृति में उतने ही प्रतीकों का निर्माण करवाऊगां और उनकी वदंना करूंगा।

इसी संकल्प की स्थापना के लिए सम्राट अशोक ने अपने पूरे साम्राज्य के विभिन्न नगरों में, भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक स्थान पर स्तूप, शिलालेख, धम्म स्तम्भ और संघारामों का निर्माण करवाया। जब निश्चित समयाविधि में इन धम्म स्कंधों (स्मारकों) के बनकर तैयार हो जाने का समाचार सम्राट अशोक को पाटलिपुत्र में प्राप्त हुआ तो उन्होनें चौरासी हजार चैत्य, स्तूपों, विहारों, स्तम्भों, शिलालेखों आदि का उद्घाटनोत्सव कार्तिक मास के अमावस्या वाले दिन अपनी राजधानी पाटलिपुत्र से ही किया था। इस मंगल अवसर पर पूरे देश भर में दीपमालाएं प्रज्ज्वलित कर तथा पुष्प मालाएं सुसज्जित कर हर्षोल्लास और धूम–धाम के साथ दीपदान महोत्सव मनाया गया। इसी ऐतिहासिक घटना के पश्चात बौद्ध धर्मावलम्यिों द्वारा दीपदानोत्सव

दीपावली

यानी दीपावली का त्योहार बहुत हर्षोल्लास और उत्साह के साथ मनाया जाने लगा।

अनागारिक धम्मपाल के अनुसार सम्राट अशोक ने ई. पू.267 से 265 के बीच कुल 16 करोड़ स्वर्ण मुद्राएं खर्च करके जो 84 हजार चैत्य और उतने ही विहार बनवाये थे, उन्हें ई. पू. 265 में विशाल धम्म महोत्सव का आयोजन कर जनता से बौद्ध धम्म पालन की प्रतिज्ञा लेकर धम्म की सेवा में दान कर दिए थे। बौद्धकालीन इतिहास काल में प्रतिवर्ष यह दिन राष्ट्रीय अवकाश रहता था। सम्राट सेना का अवलोकन करता था। और सेना उसे सलामी देती थी। सम्राट जरूरतमंदों, दुखी–पीडित जनता और बौद्ध भिक्खुओं को मुक्त हस्त से दान देता था। यह परम्परा सभी बौद्ध सम्राटों ने अक्षुण्ण बनाए रखी थीं।

दीवाली अमावस्या को ही क्यों?

यहां पर स्वतः एक प्रश्न उभर कर सामनें आता है कि जब भगवान बुद्ध के जीवन में सभी कार्य पूर्णिमा को हुए और बौद्धों के लिए पूर्णिमाओं का बहुत महत्व है तो फिर सम्राट अशोक ने उन चौरासी हजार बौद्ध स्मारको का उद्घाटन अमावस्या को ही क्यों किया ? इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर भी एक महत्वपूर्ण एवं दुखद ऐतिहासिक घटना से सम्बध रखता है। वह कार्तिक अमावस्या का ही दिन था जिस दिन भगवान बुद्ध के प्रिय और महान शिष्य ही नहीं बल्कि भगवान का बायां हाथ कहे जाने वाले वरिष्ठ भिक्खु महामोग्गल्लान की षडयंत्रपूर्ण हत्या कर दी गई थी। उन दिनों चारों ओर भगवान के धम्म का प्रभाव बडी ही तीव्र गति से बढने लगा था और लोग अन्धश्रद्धा को छोडकर बुद्धिवादी मार्ग अपनाने लगे थे। इससे ब्राहाणों का वर्चस्व खतरे में पड गया, उनकी आवभगत में कमी आने लगी और उनका मान–सम्मान कम होने लगा। इसलिए उन्होने ईर्ष्या वश तरह–तरह से भगवान बुद्ध का विरोध करने, बदनाम करने और धम्म को खत्म करने का षडयंत्र करना शुरू कर दिया। इसी विरोध की एक कडी में बुद्ध के विरोधियों ने तैर्थिकों के साथ मिलकर भिक्खुसंघ के धम्म–सेनापति पूज्य भिक्खु महामोग्गल्लान महाथेर को लाठी डण्डों से पीट–पीट कर मार डाला। अपने इस षडयंत्र की सफलता के कारण ब्राहाणों ने खूब खुशी मनाई किन्तु बौद्ध और मूलनिवासियों में मातम छा गया। अमावस्या की यह काली रात बौद्धों के मातम (शोक) का प्रतीक बन गई थी।

एक बौद्ध सम्राट होने के नाते बौद्ध संघ के साथ ब्राहाणो द्वारा किए गए इस अन्याय और कूरता का अनुभव सम्राट को अच्छी तरह हो चुका था। मुझे लगता है कि महामोगल्लान की मृत्यु का उन्हें उतना दुख नही था। जितना कि दुख, मोगल्लान महाथेर की मृत्यु पर खुशी मनाते हुए ब्राहाणों को देखकर होता रहा होगा। इसलिए सम्राट अशोक ने मोग्गल्लान महाथेर की मृत्यु के दुख को कम करने के लिए तथा ब्राहाणों की खुशी का मुंहतोड जवाब देने और अपने सम्पूर्ण राज्य में भगवान बुद्ध के धम्म को स्थापित करने के उद्देश्य से ही सम्राट अशोक ने अपने द्वारा बनवाए गए 84000 धम्म स्मारकों का उद्घाटन कार्तिक अमावस्या की काली रात में असंख्य दीप जलाकर किया। यह उद्घाटनोत्सव पाटलि–पुत्र में किया गया था इसलिए यह धम्म के प्रकाश का प्रतीक उत्सव भी है।

सम्राट अशोक ने मोग्गल्लान महाथेर की मृत्यु के दुख को कम करने के लिए तथा ब्राहाणों की खुशी का मुंहतोड जवाब देने और अपने सम्पूर्ण राज्य में भगवान बुद्ध के धम्म को स्थापित करने के उद्देश्य से ही सम्राट अशोक ने अपने द्वारा बनवाए गए 84000 धम्म स्माराकों का उद्घाटन कार्तिक अमावस्या की काली रात में असंख्य दीप जलाकर किया। यह उद्घाटनोत्सव पाटलि–पुत्र में किया गया था इसलिए यह धम्म के प्रकाश का प्रतीक उत्सव भी है।

पूज्य भन्ते महामोग्गल्लान और सारिपुत्र की अस्थियां सम्राट अशोक ने सांची के ऐतिहासिक स्तूपों में सुरक्षित रखी थी। दीपावली नवम्बर माह में आती है, इसलिए प्रतिवर्ष नवम्बर माह के अतिंम रविवार को सांची स्थित (बुद्ध) स्तूप में यह अस्थियां दर्शनार्थ रखी जाती है। इस अवसर पर वहां विशाल मेला लगता है। सांस्कृतिक–धार्मिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं। देश–विदेश के लाखों बौद्ध भिक्खु व उपासक गण वहां पहुंचते है। बौद्धो को सांची जाकर उन महापुरूषों की अस्थियों के दर्शन अवश्य करने चाहिए। उनके धम्म को समर्पित जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिए और अपने इन्हीं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ही दीपावली मनानी चाहिए।

इस दिन हमें अपनी क्षमता के अनुसार दीये, मोमबत्तियाँ जलाकर तथा प्रकाश के आधुनिक साधनों से अपने घरों तथा धम्मस्थलों पर खूब प्रकाश करना चाहिए। गृह प्रवेश, मूर्ति स्थापना तथा उद्घाटन का कोई भी शुभ कार्य हमें इसी दिन सम्पन्न करना चाहिए केवल दीप जलाने का कार्य रात को होना चाहिए क्योकि रात में हिन्दुवादी व्यवस्था के तहत बडी मात्रा में गोले–पटाखें छोडें जाते हैं। जिससे धम्म प्रवचन सुनने–सुनाने में व्यवधान हो सकता है। इसके अतिरिक्त बौद्धो के द्वारा मनाया जाने वाला यह त्योहार हिन्दुओं से बिल्कुल अलग दिखना चाहिए। इसके लिए बौद्धो को अपनी तैयारियां दूर से ही दिखने लायक साज–सज्जा बौद्ध परंपरा के अनूरूप होना आवश्यक है। उपयुक्त सुझाव यह है कि अधिक से अधिक पंचशील झण्डे और झंडियों का उपयोग अपने घर तथा उत्सव स्थल को सजाने के लिए करना चाहिए। जिस प्रकार हिन्दू लोग लक्ष्मी और गणेश की पूजा करते है उसी तरह प्रत्येक बौद्ध के घर में भगवान बुद्ध बाबाहेब और सम्राट अशोक की प्रतिमायें अथवा तस्वीरें सजानी चाहिए और विधिपूर्वक वन्दना करनी चाहिए, पुष्प अर्पित करने चाहिए तथा भगवान बुद्ध, बाबासाहेब और सम्राट अशोक के द्वारा दिए गए धम्म की सम्यक ज्योति से मानव जीवन के दुखद अन्धकार को खत्म करने का संकल्प व प्रत्यन करना चाहिए।

साभार – त्योहारों के रहस्य
– रोशन बौद्ध

भारत में महिला विकास की सच्चाई

महिला विकास एवं उनके अधिकारों के संदर्भ में हमने कानून एवं सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं को विस्तार से देखा। परंतु आज महिला अधिकारों की सुरक्षा कितनी हो रही है। महिलाएं कितनी सुरक्षित एवं संरक्षित है इसका सच भी हमें समाज में दिखाई पड़ रहा है। अभी पिछले दिनों दिल्ली में दामिनी रेप एंड मर्डर केस में हमने देखा कि सरकारें कितनी असम्वेदनशील हो गई है। उसका ज्यादा जोर अपराधियों को सजा दिलाने में नहीं सजा दिलाने की मांग कर रहे लोगों को दबा देने में था। समाज और सरकार की यह असम्वेदनशीलता कितनी घातक होगी यह तो भविष्य ही जानता है। फिलहाल यह मामला कोर्ट में है और प्रतीक्षा है अपराधियों को सजा मिलने की।

महिलाओं के कल्याण के लिए गणित अधिकांश योजनाएं कागज में चल रही हैं। कानूनों का पालन नहीं हो पा रहा है। न्याय के लिए पता नहीं कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं, फिर भी न्याय यदि मिलता भी है तो तब मिलता है जब एक जिंदगी बीत जाती है। सरकारें कानून बनाकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर लेती हैं। समाज निर्लिप्त भाव से देखता रहता है। यदि कुछेक मामलों में आंदोलन होते भी है तो वे या तो सरकार द्वारा दबा दिए जाते हैं अथवा अपनी मौत स्वयं मर जाते हैं। गांवों के महिलाओं की हालत तो और भी बुरी है, उनके लिए जैसे कोई कानून ही नहीं। कहां जाएं, किससे शिकायत करें। ऐसे में हमें देखना ही होगा कि महिला अधिकारों का वास्तविक सच क्या है। मैं घर से बाहर ही नहीं, बल्कि घर के भीतर भी प्रायः महिला विकास, महिला सशक्तिकरण व महिला अधिकारों की बातें करता रहता हूं। मेरी पत्नी ने एक दिन प्रश्न किया– ''आप इतनी लंबी चौड़ी बातें करते हो, मैं आज आपसे पूछती हूं कि भारत में महिला विकास की सच्चाई क्या है? हां, मैं असली तस्वीर देखना चाहती हूं, नकली मत दिखाना।''

मैं आश्चर्य से पूछा– ''तुम्हें क्या लगता है क्या भारत में महिला विकास नहीं हो रहा?''

वह कहने लगी– ''हो रहा होगा, लेकिन धरातल पर होता दिखाई नहीं दे रहा।'' मैं सन्न रह गया। कहने लगा– ''समूचे विश्व में महिलाओं की स्थिति में तेजी से परिवर्तन हो रहा है, भारत भी इससे अछूता नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएं बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रही हैं और सफल भी हो रही हैं। बात चाहे राजनीति की हो, व्यवसाय की हो, मीडिया की हो, उद्योग की हो, इंजीनियरिंग की हो, चिकित्सा की हो, अंतरिक्ष की हो या वैज्ञानिक शोध की। जीवन का कोई भी तो ऐसा क्षेत्र नहीं बचा, जिसमें महिलाओं ने प्रभावी उपस्थिति दर्ज न करवा दी हो।''

वह मेरी बात से संतुष्ट नहीं हुई। उसने कहा–''यह सच तो है, लेकिन पूरा सच नहीं है। यह तस्वीर का उजला पक्ष है और वह भी छोटा–सा। केवल इस आधार पर कि महानगरों और बड़े शहरों में महिलाएं अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज करवा रही है, हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति सुधर गई है और वे विकसित हो गई है।''

मैंने बहस करनी चाही तो वह मुझे रोककर बोली–''स्त्रियों की सही दशा देखनी है तो गांवों में जाओ, मलिन बस्तियों में जाओ, मध्यम दर्जे के परिवारों में जाओ। असली भारत यहीं रहता है। मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई और बैंगलोर आदि की महिलाएं सारे भारत का प्रतिनिधित्व नहीं करती। देश की तीन चौथाई आबादी गांवों में रहती है तो तीन चौथाई महिलाएं भी गांवों में ही रहती हैं। उनमें से शायद ही कोई अखबार पढ़ती होगी। शायद ही किसी को सरकारी योजनाओं का ज्ञान होगा। ज्यादातर को तो पशुओं का गोबर उठाने, बच्चे पालने और खेतों में काम करने के अलावा कुछ सूझता ही नहीं।''

मैंने बहस में हारना ठीक नहीं समझा, इसलिए कहने लगा–''माता–पिता की सम्पत्ति में बेटियों को बेटों के समान हिस्सा मिलने लगा है। क्योंकि नाबालिग विवाहित लड़कियां समाज में ज्यादा योगदान नहीं दे सकतीं, इसलिए उनकी शादी की उम्र 18 साल कर दी गई है। महिला उत्पीड़न के मामले रोकने के लिए कानूनों में व्यापक संशोधन किए गए हैं। दहेज लेने व देने को अपराध माना गया है। महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए इतनी योजनाएं चलाई गई हैं।''

वह भी बहस में कहां हारने वाली थी। उसने कहा–''क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि विकास की कुछ शर्तें होती हैं। पहली शर्त होती है शिक्षा। भारत में साक्षरता की दर उतनी तेजी से नहीं बढ़ पा रही, जितनी बढ़नी चाहिए। लगभग एक तिहाई महिलाओं के लिए आज भी काला अक्षर भैंस बराबर है। दूसरी शर्त होती है लिंगानुपात, जिसका दिवाला पिटा पड़ा है। सरकारें लाख कोशिश करके भी कन्या भ्रूण हत्या पर रोक नहीं लगा पा रहीं। लाखों लड़कियों को आज भी जन्म से पहले मार डाला जाता है। मैं तुम्हें बताना चाहूंगी कि अधिकांश विकसित देश में लिंगानुपात बराबर होने में बरसों लग जाएंगे। शर्म की बात तो यह है कि जो भारत के विकसित राज्य हैं, जैसे पंजाब व हरियाणा, इनमें लिंगानुपात की हालत ज्यादा चिंतनीय है।

तीसरी शर्त होती है सामाजिक सुरक्षा। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं कि कामकाजी महिलाओं को ज्यादा शोषण का शिकार होना पड़ता है। महिलाओं के खिलाफ अपराध के आंकड़े लगातार बढ़ते चले जा रहे हैं। परिवार में भी महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं। अस्मिता नामक एक गैर सरकारी संगठन ने एक शोध करवाया है, जिसके अनुसार तेरह प्रतिशत से अधिक महिलाएं पति द्वारा पीटी जाती हैं और जिनके साथ हाथापाई की जाती है। मुझे तो यह लगता है कि चाहे सब कुछ बदल चुका हो, लेकिन पुरूषों का मानसिक स्तर आज भी वैसा ही है, जैसा 300–400 साल पहले था। उत्पीड़न से परेशान महिलाओं की आत्महत्याओं का ग्राफ लगातार बढ़ता जा रहा है। मैं तो कहती हूं कि कोख से लेकर कब्र तक महिलाएं असुरक्षित हैं। अगर मैं राजनीति की बात करूं तो बेशक महिलाओं को पंचायत स्तर पर 33 प्रतिशत आरक्षण दे दिया गया है। लेकिन सच्चाई देखो जरा, कुछ महिलाओं का जिक्र छोड़ दिया जाए तो शेष डमी है। उनके पति या परिवार के सदस्य ही सभी निर्णय लेते हैं। वे तो केवल कठपुलियों की तरह केवल स्टांप बन हुई हैं। जनाब, चौथी शर्त होती है, व्यक्तिगत स्वतंत्रता। गांवों में महिलाएं आज भी सुबह तीन–चार बजे उठ जाती हैं। पशुओं को चारा–पानी देती है, दूध निकालती है फिर घर का काम–काज निपटाकर खेतों में जाती है। शाम को घर लौटती हैं तो फिर पशुओं को चारा खिलाना, दूध निकालना और भोजन की व्यवस्था का सिलसिला शुरू हो जाता है। मैं पूछती हूं कि गांव की औरत, जो हर वक्त काम में जुटी रहती है, उसे कामकाजी क्योंन नहीं माना जाता? उन्हें उनके काम की प्रशंसा तो दूर, लताड़ जरूर मिल जाती है। वे गुलामों की तरह जीवन जी रही हैं। पांचवी शर्त होती है स्वास्थ्य सेवाएं। आज देश की साठ प्रतिशत एनीमिया की समस्या से जूझ रही हैं। हर साल देश में 15 लाख लड़कियों का जन्म होता है और उनमें से एक चौथाई अपना पंद्रहवां जन्मदिन देखने से पहले ही मौत का शिकार हो जाती हैं। देश की हर पाचवीं महिला किसी न किसी गंभीर रोग से पीड़ित हैं। और साहब जी, छठी शर्त होती है काम करने की आजादी। आप खुद ही बता दीजिए, महिलाओं को क्या काम करने की आजादी है। आज भी अगर वे नौकरी की बातें करती हैं या बिजनेस की तो ज्यादातर घरों में उनका मजाक उड़ाया जाता है। आज भी ज्यादातर महिलाओं को वही करना पड़ता है जो उनके पति या परिवार के सदस्य चाहते हैं। और मैं समझती हं कि सातवीं शर्त होती है अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। यह तो जैसे उनसे पूरी तरह ही छीन ली गई है। घर के, परिवार के या बाहर के, किसी भी मामले में उनकी प्रायः सलाह तक नहीं ली जाती। फैसले लेना आज भी मर्दों का पुश्तैनी अधिकार समझा जाता है।

फिर इससे पहले कि पत्नी का लंबा–चौड़ा भाषण और आगे बढ़ता, मैंने उसे टोक दिया और कहा–''तुम नेगेटिव सोच रही हो। कुछ पॉजीटिव भी तो सोचो। क्या तुम्हें कहीं भी नहीं लगता कि देश की महिलाएं वास्तव में सशक्त होकर उभर रही हैं।''

उसके चेहरे के भाव बदले। कहने लगी– ''मुझे उस दिन बहुत खुशी हुई थी, जब श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल देश की राष्ट्रपति बनी थीं। तब मुझे लगा था कि देश की महिलाएं अगर चाहें तो पुरूषों को हर क्षेत्र में टक्कर दे सकती हैं।''

मैंने तत्काल बातचीत का विषय बदल दिया और पूछा–''तुम क्या मानती हो, महिलाओं का सशक्तिकरण पूरी गति से क्यों नहीं हो पा रहा?'' उसने फौरन जवाब दिया–''मैं समझती हूं कि अभी तक देश की महिलाओं को अपने अधिकारों और कानून का ज्ञान नहीं है। पढ़ी–लिखी महिलाएं भी इस संबंध में प्रायः कुछ नहीं जानतीं और जानने की कोशिश भी नहीं कर रहीं। एक तो अशिक्षा उनके आड़े आ रही है और दूसरा मन में छिपा डर। अगर महिलाएं शिक्षित होकर अपने पैरों पर खड़ी हो जाएंगी तथा मन से हर तरह का डर निकाल देंगी, तब सही मायनों में उनका सशक्तिकरण हो जाएगा। इससे पहले बिल्कुल नहीं।''

मैं उसकी इन बातों से पूरी तरह सहमत था। फिर कोई बहस न हुई। दोनों अपने–अपने कामों में लग गए। मैं कहना चाहता हूं कि यह सच्चाई है। सबसे पहले महिलाओं को शिक्षित होना होगा। अपने अधिकारों और कानून के बारे में पूरी जानकारी एकत्रित करनी होगी। आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने के लिए अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ेगा। और इससे भी बड़ी बात यह है कि भीतर छिपे डर को बाहर निकालना होगा। डर ऐसे ही नहीं निकलेगा, जब तक कि शारीरिक रूप से इतना सक्षम नहीं हुआ जाता कि असामाजिक तत्वों से निपटा जा सके।

मेरा सुझाव है कि महिलाएं सबसे पहले स्वयं को अबला समझना छोड़ दें और स्वयं को वास्तव में दुर्गा या काली समझ लें। वे ऐसा प्रशिक्षण जीवन में अवश्य लें कि वक्त पड़ने पर अपनी सुरक्षा आप कर सकें। इसके अलावा अगर किसी लड़की या महिला के खिलाफ कोई अपराध होता है तो अन्य महिलाओं को खामोश नहीं रहना चाहिए। वे पीड़ित महिला का अवश्य साथ दें। जब तक असामाजिक तत्वों व अहंकार से भरे पुरूषों से टक्कर नहीं ली जाएगी, महिलाओं का सशक्तिकरण हो ही नहीं सकता।

एक खास सुझाव

मेरी एक महिला मित्र सौम्या चतुर्वेदी का एक और सुझाव है। वे कहती है–'अपनी बच्चियों को माता–पिता या अभिभावक ही काफी हद तक कमजोर बनाते हैं। उन्हें चाहिए कि वे अपनी बच्चियों को मजबूत बनाएं। उन्हें अधिक से अधिक पढ़ाएं–लिखाएं तथा आत्म सुरक्षा के लिए ट्रेनिंग दिलवाएं। साथ ही उन्होने यह भी कहा है कि एक पिता अपनी बेटी की शादी पर लाखों रूपए खर्च कर देता है, फिर भी वह ससुराल में प्रताड़ना झेलती है। क्यों न यही पैसा बच्ची के सम्पूर्ण विकास पर खर्च किया जाए। उसे कहीं अच्छी जगह नौकरी लगवाया जाए या कोई बिजनेस खोलकर दिया जाए। इससे वह दहेज का दंश नहीं झेलेगी तथा प्रताड़ना का शिकार नहीं होगी।

मुझे हमेशा लगता है कि महिला सशक्तिकरण एक गंभीर विषय है। इसकी गहराइयों में जाना होगा। इस बात को निश्चित मान लीजिए कि जब तक कन्या भ्रूण हत्या, दहेज, घरेलू उत्पीड़न, आर्थिक कमजोरी और असुरक्षा किसी महिला को घेरे रहेंगे, तब तक उसका सशक्तिकरण कोसों दूर रहेगा। **साभार**

महिलाएं समझे अपने कानूनी अधिकार

(पृ.सं. 176 से 179 तक)

जे.के.वर्मा

ईरान में नाग पूजा तथा नाग जाति

हम अगले पृष्ठों पर बतलाएंगे कि नाग पूजा तथा नाग जाति के पश्चिमोत्तर भारत के सबसे बड़े केन्द्र तक्षशिला में नहीं हुआ और यह अवश्य ही भारत में पश्चिम से आई होगी। जब हम ईरान के इतिहास पर नजर डालते हैं तो आश्चर्यजनक रूप में हमें नाग पूजा और नाग जाति के अस्तित्व के अनेक प्रमाण वहां से मिल जाते हैं। जेम्स फैरगूशन इसके प्रमाण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं– ''सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा मनोरंजक व्यक्ति, पर्थिया के इतिहास में हमारे विषय से संबंधित जोहाक है। सभी प्रकार के वर्णनों के अनुसार वह अरब से आया तथा अपना पद्नाम बीवर–अस्प (Bivar-Asp) अपने 10,000 घुड़सवारों के रक्षकों से प्राप्त किया जो हमेशा उसके साथ रहते थे। (Glossary S.V. Dahaka) ताज अथवा ताजी, से उसकी वंशावली जिसके नाम के पीछे अकबर का नाम पड़ा है, दोनों बुन्डेहेज (Bundehsch) तथा मोजतिल (Windisch Mann, Zoroastriche Studian p.30, 37c, 39) में दी है। उसके पिता के बारे में बतलाया गया है कि उसके पास मात्र भेड़ों के रेबड़ तथा पशुओं के झुंड ही थे, मगर उसने मध्येशिया को विजित कर लिया था तथा अपना निवास काबुल में बना लिया था। उसके राज्य अथवा राजपरिवार 1,000 साल तक चला जब उसे फेरीदून ने, गवाह, जो एक लोहार था की सहायता से गद्दी से नीचे उतार दिया जिसके बाद जेमशीद का मूलवंश दोबारा सत्ता में आया।

बिना किसी शंका के, फेरीदून की पहचान जेन्द–अवेस्ता के थ्राइटओना (Thraetaona) से की है, जिसे तीन सिरों वाले नाग दहाक का वध करने वाले के रूप में सम्मानित किया जाता है जो अन्गरामेन्यूज की बुरी शक्ति की उत्पत्ति था (Weber's Indische Studien Voll III p.416) जो अहिरमान के नाम से प्रसिद्ध है।

जोहाक के बारे में सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने बतलाया है कि दो नाम उसकी पीठ से उगे हुए थे, एक प्रत्येक कंधे से, और आगे उन्होंने कहा है कि इन राक्षसों को शांत करने के लिए, यह आवश्यक था कि दो नौजवानों की प्रतिदिन बलि दी जाए तकि उसके दिमाग को शांत किया जा सके (Mojmil 156; Windischmann 37; Shah Nameg, Atkinson's Translation p.14) यह अब तक रहस्य ही था मगर जैसाकि अब हम देखेंगे कि सभी नाग जाति की नारियों के कंधों के मध्य में एक नाग होता था तथा भारत के सभी पुरूषों में एक के साथ तीन, पांच अथवा सात नाग सिर पर होते थे। जोहाक संभवतः उनका एक पूर्व स्वरूप था जो औरतों का ठीक दो गुणित था तथा वह भी संभव है कि जेन्द अवेस्ता में तीन सिर थे (Tribus Oribus Praeditum Tribus Capitibas, Masaudi III p.252 and the Mahomedans, on the contary always speak of two serpents borne on the shoulders of Dahak) जिसमें दो नागों के मध्य में एक आदमी का सिर भी था। हम हाल में इसकी उचित पहचान इसी तरह कर पाएंगे मगर हमें यह स्वरूप बहुत पूर्व का अथवा सर्व प्रथम कथाओं का दिखाई पड़ता है जैसाकि हम भारत में देखते हैं। मानवी बलियां वैसी ही हैं जैसी कि हमें नाग पूजा के साथ–साथ सारी दुनिया में देखने को मिलती हैं नाग पूजा का अंतिम चिह्न चक्र, आर्दिशीर बबेगन को, जो सस्सानियन राज परिवार का (226ई.) पहला राजा है को भेंट कर रहा है। घोड़े के पैरों के नीचे, जिस पर कि देवता (ओरमज्द) बैठा है, अर्देवन पड़ा है जो अंतिम पर्थियन राजा था जिसके सिर के गिर्द दो नाग लिपटे हुए हैं (Kerporter Vol I Plate xxiii; Flandin et caste, Voyage en Perse Plate CLxxxii) ऐसे नहीं कि संभवतः जोहाक के कंधो को सजाते हों, मगर अभी भी यह चिन्हित करने को महत्वपूर्ण है कि मूर्ति पार्थियनों की, जोहाक की घृणित जाति का प्रतिनिधित्व करती है जो कलंकित अहिरमान के अनुयायी थे जिसे ओरमज्द पैरों के नीचे दबोचता है जब कि राजशाही का चिह्न, आग की पूरा करने वाले जोरोस्ट्रानियन ससानियन को भेंट करता दिखाई पड़ता है।''

उपर्युक्त उभरे चित्र में ससानियन आर्यों का, ईरान के आदिवासियों, जो नाग पूजक थे, पर जीत का प्रतिनिधित्व करता दिखाई पड़ता है जबकि आर्यों ने उनसे सत्ता छीन ली थी। इससे एक अन्य रहस्य सम्मुख आता है कि फेरीदून की पहचान, निःशंक जेन्द–अवेस्ता के थाइटाओना के साथ की गई है, जिसका सम्मान तीन सिर वाले दहाक का वध करने के लिए किया जाता है। यह दहाक जो कि दुष्टशक्ति अन्गरामैन्यूज की उत्पत्ति था साधारणतः अहिरमान के नाम से जाना जाता है। अन्गरामैन्यूज की पहचान भारत के मानव या मानव्य से की जा सकती है जिसे भारत में नागों का पूर्वज माना जाता है।

फैरगूशन ने एक अन्य कथा दी है जिसके अनुसार नाग लोग ईरान से आए और अफगानिस्तान काबुल में स्थापित हो गए। वह लिखता है – ''जोहाक की जाति का एक अवशेष काबुल में बच गया दिखाई पड़ता है यह हमारे लिए सोसतौर से बहुत मनोरंजक बात होगी अगर हम उसके बारे में कुछ अधिक जानकारी प्राप्त करें क्योंकि यह भारत तथा पर्शिया में नागपूजा को जोड़ने वाली कड़ी दिखाई पड़ती है। मौजमिल के अनुसार जब ताज, जो अरबों का पूर्वज था, काबुल में बस गया, उसके एक बेटे ने फेरीदून की बेटी से शादी कर ली तथा वह काबूल में बस गया उस जोड़े का बेटा रूस्तम का नाना था (Windischmann, 371)। हमें इससे आगे परिवार के बारे में सूचनाएं शाहनमेह में मिलती हैं। जब शाम का बेटा जाल काबुल गया तो उसने मिहराव, जो जोहाक का उत्तराधिकारी था को गद्दी पर बैठे पाया था उसकी बेटी रूदवेह के प्रेम में फंस गया। मुविद ने उसकी शादी रूदवेह से करने की मनाही कर दी क्योंकि काबुल का प्रमुख नाग राजा जोहाक के परिवार से संबंधि था पिता भी उक्त परिस्थितियों से, कि मनुचेहर विरोध करेगा, डर गया। संभव है जोड़े को आज्ञा न दे वह भी बिना किसी कारण के नहीं, क्योंकि राजा ने शाम को आज्ञा दी कि वह काबुल को आग और तलवार से विनष्ट कर दे खासतौर से मिहराव के घर को जो नाग जाति का तब शासक था तथा जो उससे संबंधित है सबको मौत के घाट उतार दें। (Atkinson's Translation of Shah Nameh p.77 et seq) संयोग से प्रेमी जोड़े के लिए कठिनाइयां समाप्त हो गईं और उसका परिणाम यह हुआ कि रूस्तम का जन्म हुआ जो पूर्व की प्रेम कथा का आश्चर्यजनक चमकता सितारा था।''

उपर्युक्त कथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आर्यों के भारत में आने से पूर्व, नाग जाति, जो अरब व बाबुल की मूलनिवासी थी पहले ईरान पहुंची तब काबुल (अफगानिस्तान की राजधानी) जो पश्चिमोत्तर भारत में स्थित तक्षशिला के बहुत निकट है। उनके इस प्रवेश के प्रमाण स्पष्टता तक्षशिला से तलाश किए जा सकते हैं। तक्षशिला नाग जनजाति के राजा तक्षक की राजधानी थी, यह बात ध्यान में रखने की है कि सिंधुघाटी के लोग भी पश्चिमी एशिया यानी सुमेर से आए तथा वे लोग भी मूल रूप से उसी जाति (द्रविड़) से संबंधित थे।

प्रसिद्ध नृवंश शास्त्री, रोनाल्ड बी. डिक्सन ने, मानव अधिकारों के अवशेष तथा अन्य पुरातत्व मूल्य की वस्तुएं, जो कि प्राचीन काल की कब्रों की खुदाईयों से प्राप्त हुई हैं, के आधार पर एक बहुमूल्य रचना मानव जाति की ऐतिहासिक उत्पत्ति पर लिखी है। वह अपनी उपयुक्त महत्वपूर्ण रचना के आधार पर ईरान के जातीय मूल तत्व का तथा आर्यों के सहसा हुए आक्रमण के परिणामस्वरूप भारत की ओर उनके भाग उठने का वर्णन प्रस्तुत करते हैं–''हम संभवतया कल्पना कर सकते हैं कि सर्वाधिक प्राचीन, तलाश की जा चुकी उस क्षेत्र की जनसंख्या गोल सिर वालों की थी जो संभवतया खासतौर पर अल्पाइन प्रकार के लोग थे जिनकी बराबरी अनातोलिया के तथा उससे आगे के पश्चिमी क्षेत्र के लोगों से की जा सकती है। भाषा के विचार से ये लोग संभवतः अभारोपीय लोग थे। दक्षिण में फारस की खाड़ी के किनारे काली चमड़ी तथा जमे हुए बालों वाले साधारण सभ्यता के लोग रहते थे.... जातीय विचार से, आर्य आक्रमण के मेरे विचार से दो परिणाम हुए – (1) पहला यह कि आक्रमणकारियों के दबाव के कारण, गोल सिर वाले कुछ लोग, दक्षिण–पूर्व की ओर सिंधु के डेल्टा की ओर धकेल दिए गए तथा वहां से प्रायद्वीप के पश्चिमी किनारे–किनारे नीचे चले गए। (2) उनकी एक शाखा संभवतः ओमान की ओर दक्षिणी अरब में चली गई जहां उन्होंने वहां की जनसंख्या में गोल सिर वाले तत्व का भारी हिस्सा जोड़ दिया।

उक्त विचार को विभा त्रिपाठी, बी. एस. गुहा तथा आर. पीत्र चंदा की सहमति प्राप्त होती है कि ये गोल सिर वाले अल्पाइन ईरानी लोग यदु, तुरबस, अनु, द्रह्यु, पुरु आदि थे। इन अल्पाइन लोगों के प्रमाण हड़प्पा के कब्रिस्तान H तथा G की खुदाई में प्राप्त हुए हैं।

हम नाग जाति और उनके विभिन्न राज परिवारों पर विचार करने से पूर्व, उनकी संघ पर आधारित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सैनिक व्यवस्था, जो उनके समाज की खास पहचान थी, पर विचार करते हैं।

साभार
भारत की आदिवासी नाग सभ्यता
एक महान आश्चर्य
(पृष्ठ सं० 11 से 14 तक)
डॉ. नवल वियोगी

आदिमानव की विभिन्न नस्लें

आज तक की खोजों के आधार पर सारे विश्व में मुख्यतः 7 मानव वंश श्रेणियां ज्ञात हो पाई हैं। यह भी सारी खोजें विदेशियों द्वारा की गई हैं। फिर भी तर्क तथा अनुसंधान की प्रामाणिकता के आधार पर मानना ही हमारा कर्तव्य है जब तक कि नए आविष्कार और नहीं आ जाते। ये सातों की श्रेणियां– GENERA द्रष्टव्य हैं–

1. सैंधव पिथेकस– (SANDHAVA PITHECUS)– भारत वर्ष
2. रेमा पिथेकस– (RAMA PITHECUS)– चीन, अफ्रीका
3. कीनिया पिथेकस– (KENYA PITHECUS)– केन्या
4. आस्ट्रैलोपिथेकस– (ASTRALO PITHECUS)– द. अफ्रीका
5. पैरैंथ्रोपस– (PARANTHROPUS)– अफ्रीका –जावा
6. जिंजैंथ्रोपस– (ZINJATHROPUS)– इथियोपिया
7. होमोसेपियन्स– (HOMOSAPIENS)– तंजानिया, इंडिया

जी. ई. लेवी– (G.E. LEWIS-1930) को भारत की सैंधव तथा शिवालिक पर्वत श्रेणी में तथा एल.एस.बी. लीकी– (L.S.B.LEAKEY-1995) को अफ्रीका और चीन में इन आदि होमिनीड पूर्वजों के लगभग–1.2 से 1.4 करोड़ वर्ष पुराने मायोसीन युग के जीवाश्म मिले। जो 90% मानव थे। सिर, पैर, मस्तिष्क तथा शरीर जैव रासायनिक विधियों से आधुनिक वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि मानव शरीर की प्रोटींस विशेषतः रुधिर प्रोटींस गोरिल्ला और चिंपैंजी की प्रोटींस 80–85% मिली–जुली होती है। क्योंकि अब शरीर की सारी प्रोटींस जींस– (GENES) के अनुसार ही होती है, वैज्ञानिकों का निष्कर्ष है कि हमारे और इन आदिकपि मानव में मात्र 1% का ही अंतर है और यह कपि से मानव का अलगाव मात्र 55 लाख वर्ष पुराना है। जो 2 लाख वर्ष पूर्व तक विद्यमान रहे।

रेमंड डार्ट–1924 को दक्षिणी अफ्रीका में ट्वांग के निकट एक गुफा में प्लायोसी–(PLIOCENE) युग की चट्टानों से एक पांच–छः साल के बच्चे की खोपड़ी का जीवाश्म मिला। डार्ट ने इसका नाम रखा ट्वांग शिशु। डार्ट ने इस जीवाश्म के आधार पर लक्षणों के आधार पर इसे आदिमानव माना और आस्ट्रैलोपिथेकस ऐफ्रिकैनस कहा। ब्रूम–(BROOM 1936) को अफ्रीका में तथा अन्य जीवाश्म जावा से प्राप्त हुए। इसे पैरैंथ्रोपस कहा गया। लीकी–1959 को अफ्रीका से एक और मानव जीवाश्म मिला जिसे वैज्ञानिक ने जिंजैंथ्रोपस का नाम दिया। इनका वजन 40 से 80 कि.ग्रा. तक था।

अमेरिकी मानव शास्त्री डोनाल्ड जोहन्सन 1974 को इथियोपिया के शैल स्तरों से 32 लाख वर्ष पुराना होमिनीड पूर्व का कंकाल मिला है। इनका जीवन बुलामैदानी एवं भोजन सर्वाहारी था।

प्रागैतिहासिक आदिमानव की विभिन्न नस्लें

आदिकपिमानव, आदिमानव तथा वर्तमान मानव में कुछ खास तथा सामान्य सा अंतर पाया जाता है, जिन्हें बखूबी जांचा एवं परखा गया है। आज का जो मानव है उसकी कपाल गुहा– (CRANIAL CAVITY) का आयतन प्रायः 1475 CC क्यूबिक से.मी. होता है तथा कपिमानव गोरिल्ला, गिब्बन तथा चिंपैंजी में यह 410 CC से 573 CC तक ही होता है। इसी प्रकार की क्रमानुसार अनेक प्रजातियां विश्व के तमाम हिस्सों में पैदा होती रहीं और अपनी विकसित प्रजाति देकर कुछ काल पश्चात विलुप्त होती रहीं, इसीलिए इन मानव प्रजातियों को प्रागैतिहासिक मानव प्रजातियां कहते हैं।

1. होमो हैबिलिस (HOMO HABILIS)

उत्पत्ति का काल – 15 से 10 लाख वर्ष पूर्व
युग–प्लीस्टोसीन–(PLEISTOCENE EPOCH)
खोजकर्ता–लीकी–(LEAKEY-1962)
स्थान– अफ्रीका–ओल्डुवाइ गॉज की पर्वत श्रेणियां
प्रजाति– होमो श्रेणी की प्रथम जाति (SPECIES)
कद – 1.2–1.5 मीटर भार–40–50 K.G.
कपालगुहा आयतन– 700 CC – 900 CC तक
त्वचा रंग– भूरा काला
मुखाकृति– 85° – 98 अंश तक
भौंह उभार – सामान्य घना उभार
पूर्वज– मानव के प्रथम श्रेणी का
विशेष कार्य – हथियार का निर्माण

2. हीडलबर्ग (HOMO HEIDEL BERGENSIS)

उत्पत्ति का काल – 8 लाख वर्ष पूर्व
युग – प्लीस्टोसीन
खोजकर्ता–विलियन किंग, टी.एच. हक्सले
स्थान– जर्मनी–हीडलबर्ग की पहाड़ियां यूरोपीय महाद्वीप, ग्रेटब्रिटेन के केंट के स्वानकोंबे नामक स्थान पर तथा फ्रांस, बेल्जियम, इटली, जर्मनी, स्पेन, फलेस्टाइन
कपालगुहा का आयतन – 700 CC - 1200 CC
शारीरिक कद – 1.2–1.5 मीटर
विशेष कार्य – हथियार एवं शिकार

3. जावा मानव (JAVA-HOMO ERECTUS ERECTYS)

उत्पत्ति का काल – 4–6 लाख वर्ष पूर्व
युग – प्लीस्टोसीन
खोजकर्ता – यूजीन डुबाय – 1891
स्थान– सोलो नदी की घाटी–ट्रिनील–जावा
प्रजाति– मायर–1950 ने होमो इरेक्टस कहा
कद– 5 से 6 फीट तक भार 70 K.G.
कपालगुहा का आयतन – 700 CC से 1100 CC तक
आवास – समूह बनाकर गुफा में
कार्य – हथियार, शिकार
विस्तृत क्षेत्र – सुमात्रा, बोनिया तथा मलाया
खोजकर्ता –II– अर्नेस्ट हेकल

4. पेकिंग मानव (HOMO ERECTUS PEKINGENSIS)

उत्पत्ति का काल – 6 लाख वर्ष पूर्व
युग – मध्य प्लीस्टोसीन
खोजकर्ता – डैविड्सन ब्लैक– 1927 ई. में
स्थान – पेकिंग–चाऊ–को–टिन की गुफाएं
प्रजाति – साइनैंथ्रोपस
कद– 1.55 – 1.65 मीटर
कपालगुहा – 850 CC – 1300 CC
अधिवास – समूह बनाकर गुफा में
क्षेत्र – चीन, मलाया, स्वीडेन
विशेष कार्य – सर्वाहारी, जानवर, नर भक्षण स्फटिक – QUARTZ की खोज तथा स्फटिक के नुकीले हथियार, प्रस्तर हथियार, अग्नि का प्रयोग

5. एटलांटिक या टर्निफायर मानव (TERNIFIER)

उत्पत्ति का काल – 6 लाख वर्ष पूर्व
युग – मध्य प्लीस्टोसीन
खोजकर्ता – डुबॉय – 1954–1955
स्थान – अफ्रीका के टर्निफायर की चट्टानों से
प्रजाति – होमो इरेक्टस मॉरीटैनिकस
कपालगुहा – औसतन – 1075 क्यूबिक सेंटीमीटर
अधिवास – छप्पर तथा गुफाओ में
विशेष कार्य – शिकार के हथियार, आग का प्रयोग, फल वृक्षों की सुरक्षा, स्वंय की सुरक्षा, जड़ी बूटियों का साधारण प्रयोग

6. निएंडरथल मानव (HOMOSAPIENS NEANDER THALENSIS)

उत्पत्ति काल – 1.5 लाख वर्ष पूर्व II 70–80 हजार वर्ष पूर्व 3500 वर्ष तक अस्तित्व में रहे
यगु– अंतिम प्लीस्टेसीन
खोजकर्ता – फूहलरोट – C. FUHLROTT-1856
स्थान – 1856 में जर्मनी
प्रजाति – निएंडरथलेंसिस होमो सेवियन्स
कद – 1.55–1.65 मीटर था
कपालगुहा – 1400–1450 CC तथा II-1350–1700
अधिवास – झोपड़ी तथा गुफा
विशेष कार्य – वाणी का विकास, आग का प्रयोग, नुकीले तथा धारदार हथियार, कृषि की ओर अग्रसर जानवर खाल के वस्त्र पहनते थे। संस्कार करते थे।

सेवा में,	
नाम श्री..	
पता	
....	
....	

7. क्रो मैगनॉन (CRO-MAGNON) मानव (HOMO-SAPIENS FOSSILIS)

उत्पत्ति काल – 35 हजार वर्ष पूर्व
युग – प्रबुद्ध युग
खोजकर्ता – मैक्ग्रीगर– MCGREGOR -1868
स्थान – फ्रांस में क्रो मैग्नॉन के शिलाखंड
प्रजाति – होमोसेवियंस फोसिलिस
कद – 6½ फीट तक
अधिवास – झोपड़ी, मिट्टी के घर, पत्थर के टुकड़ों की दीवारों पर छप्पर, आग का प्रयोग, हथियार निर्माण तथा उसका प्रयोग और कृषि का आरंभ
विस्तृत क्षेत्र – फ्रांस, इटली, चेकोस्लोवाकिया, अफ्रीका, इजरायल आदि आयतन कपालगुहा– 1400 CC – 1700 CC तक

भारतीय प्रजाति

8. सैंधव–शिवालिक मानव (HOMO-SAPIENS-SAPIENS)

उत्पत्ति का काल – ईसा पूर्व 80,000 वर्ष
स्थान – सप्त सैंधव, लोयल, कालीबंगा, चंदड़ो, सूरकोहड़ा, खंभात, धौलाबीरा, आमरी, बालाकोट, जाललपुर, रोपड़, रंगपुर, सतपुड़ा तथा शिवालिक समस्त पहाड़ियां।
युग – भारतीय प्रज्ञता युग
खोजकर्ता – जे. डोनाल्ड–1648– J. DONLDO जी. ई. लेवी– G. E. LEWIS, जान मार्शल–1922–1930 अर्नेस्ट मेके–1931, पेंसलवानिया विश्वविद्यालय में अमेरिकी पुराविद् जार्ज. एफ. देल्स–GEORGE F. DALES–1963–64 सर मार्टीमर हिवीलर–1946 तथा ई. जे. एच मेकी–E.J.H. MACKAY-1935–36
इनके पूर्वज–सैंधव तथा शिवालिक कपि मानव
प्रजाति – SAPIENS- SAPIENS
काल से काल तक – उत्पत्ति से आज तक
कद – 5 से 7 फीट तक
कपालगुहा का आयतन – 1475 CC - 1755 CC से भी अधिक
अधिवास – झोपड़ी, मिट्टी के घर, पत्थर के दीवारों पर लकड़ी के पाट पर मिट्टी का क्षत का प्रयोग, लकड़ी के घरों का प्रयोग तथा पेड़ों पर सुरक्षात्मक आवास का प्रयोग
विशेष कार्य – आग का आविष्कार एवं प्रयोग, हथियार निर्माण–प्रयोग, आभूषणों का निर्माण, बर्तन का निर्माण, कृषि कार्य, उत्पादन एवं संग्रह, प्राकृतिक धर्म की स्थापना, वाणी का प्रयोग विवाह एवं परिवार।
विस्तार क्षेत्र – तीन दिशाओं में इनकी शाखाएं फैलीं– 1. दक्षिण दिशा में सागर के दोनों ओर अफ्रीका एवं मलेशिया 2. असीरिया, सूडान सोमालिया तथा युगांडा 3. भूमध्य सागर के किनारे–किनारे फैलकर दक्षिणी, पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका आदि। इस प्रजाति ने सारे काल देखे हैं– पूर्व पाषाण, पाषाण, धातु, कांस्य लौह तथा वर्तमान कंप्यूटर युग।

सैंधव तथा शिवालिक प्रजाति का वर्तमान स्वरूप–66 अनुसूचित जातियां, 56 जन जातियां, 70 हिंसक (परिगणित जातियां तथा 75 पिछड़ी जातियां, परिगणित जातियों का नाम बदलकर ही अनुसूचित जाति की श्रेणी रखी है।

साभार –
शूद्रो का प्रचीनतम इतिहास
पृष्ठ सं. 79 से 84
एस. के. पंजम